* श्री सीतारामचन्द्राभ्यांनमः *

श्रीमते भगवते रामानन्दाय नमः ।

श्री पञ्च संस्कार ।

मङ्गलाचरणम् ।

श्रीजानकी जानिमुदार वृत्तं ।
श्रिया समेतं श्रित कल्पबृत्तम् ।
ललाम साकेत महालयं तं ।
रघूत्तमं राममहं नमामि ॥

मङ्गलाचरणम् ।

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाऽभिन्नां महेश्वरीम् ।
मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम् ॥
वैष्णवधर्मं त्रातारं यतीन्द्रं सद्गुणाकरम् ।
प्रणमामि सदा भक्त्या रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥
सीताराम प्रियान् श्रेष्ठान् ज्ञान वैराग्य भूषितान् ।
पञ्चसंस्कार सम्पन्नान् वैष्णवान् प्रणमाम्यहं ॥

पञ्चसंस्कारकी आवश्यकता ।

श्री

वैष्णव सम्प्रदायमें पञ्चसंस्कार भगवत्प्राप्ति के प्रधानतम साधन माने जाते हैं। श्री वैष्णव समाजका यह दृढ़ सिद्धान्त है कि मनुष्य शास्त्रोक्त बिधि विधानपूर्बक जबतक पञ्चसंस्कारोंसे संस्कृत नहीं होता तबतक वह भगवत्सेवाका प्रभुकैङ्कर्य्य करनेका भी अधिकारीनहींहोसकता, तब फिर भगवत्प्राप्ति करना तो बहुत दूर की बात है। अतः प्रत्येक भगवद्धाम तथा भगवत्प्राप्ति लोलुप प्रेमी मुमुक्षुओंका यह सर्बप्रथम कर्तब्य है कि पञ्चसंस्कारोंसे संस्कृत होजाना ।

वृद्ध हारीत स्मृतिका बचन है —

अवैष्णवास्तु ये विप्राः पाषण्डीस्ते नराधमाः ।
तेषां तु नरके वासः कल्पकोटि शतैरपि ॥
तापादि पञ्चसंस्कारो मन्त्ररत्नार्थ तत्व वित् ।
वैष्णवस्स जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ॥
तस्मात्तापादि संस्काराः कर्तव्या धर्म कांक्षिणा ।
अयमेव परो धर्मः प्रधानः सर्ब कर्मणाम् ॥

"अवैष्णव ब्राह्मण पाखण्डी और मनुष्यों में अधम कहलाते हैं। उनको सैकड़ों और करोड़ों कल्पों तक घोर नरकमें वास करना पड़ता है । तापादिक पञ्चसंस्कारोंसे सम्पन्न मन्त्ररत्न के अर्थों को तथा तत्वोंको यथार्थरूपेण

जानने वाला श्रीवैष्णव जगत्पूज्य होता है और अन्तमें भगवान् के परमदिव्य धामको प्राप्त करता है । इसलिये प्रत्येक धर्मप्रेमी मनुष्यका यह प्रधान कर्तव्य है कि पञ्चसंस्कारों से सम्पन्न होजावे। क्योंकि समस्त सात्विक श्रेष्ठ धर्मोंमें, और शुभकर्मों में यह श्रेष्ठतम धर्म और परम श्रेष्ठ कर्म माना गया है ।

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम् ।
पशुयोनिवमाप्नोति दीक्षा हीनो मृतो नरः ॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जप पूजादिका क्रियाः ।
न फलन्ति प्रिये तेषां शिलायामुप्त बीजवत् ॥

हे प्रिये ! अदीक्षित मनुष्यके किये हुए प्रत्येक शुभ कर्तव्य भी अनर्थकारक होजाते हैं । अदीक्षित मनुष्य मृतक शरीरवत् अस्पृश्य है। वह अन्त में पशु योनि प्राप्त करता है, अदीक्षित जप, तप, पूजादिक जो शुभ क्रियायें करता है वे सब निष्फला होजाती हैं । जैसे पाषाण पृष्ठ पर बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है। अतः सद्गुरु शरणागति ग्रहण करके पञ्चसंस्कारों से सम्पन्न होना वैष्णवी दीक्षासे दीक्षित होना परमावश्यक है ।

बिना श्रीवैष्णवी दीक्षां प्रसादं श्रीगुरोर्विना ।
बिना श्रीवैष्णवं मन्त्रं कथं भागवतो भवेत् ॥

" श्रीगुरु महाराज की असीम कृपा बिना श्रीवैष्णवी

दीक्षा प्राप्त किये बिना, तथा मन्त्ररत्न श्रीराममन्त्र प्राप्त किये बिना मनुष्य कैसे श्रीवैष्णव महा भागवत हो सकता है ? श्री-अगस्त्य महर्षिजीने तो साफ-साफ कह दिया है कि ।

नाङ्कितो चापबाणाभ्यां न मन्त्रोऽस्ति षडक्षरः ।
न नाम राम सम्बन्धि न रामोपासको भवेत् ॥

जो तप्त धनुर्वाण मुद्रा से अङ्कित नही है जिसके पास षडक्षर श्रीराममन्त्रराज नही है, जिसका नाम श्रीरामनामका सम्बन्धि नही है वह श्रीरामोपासक श्रीवैष्णव हो ही नही सकता है । अर्थात् श्रीरामोपासकोंको इन चीजों की पूरी आवश्यकता है ।

श्वादकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम् ।
वैष्णवो वर्ण बाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम् ॥

"जो ब्राह्मण है सर्व गुण सम्पन्न है परन्तु श्रीवैष्णव नही है वह चाण्डाल के समान घृणास्पद है । तथा श्रीवैष्णवी दीक्षा सम्पन्न श्रीवैष्णव वर्ण बाह्य (अन्त्यज) भी है वह भी तीनो भुवनों का पावन करने वाला परम पवित्र है ।

इन वचनों से यह स्वपष्टतया ज्ञात होता है कि जब तक मनुष्य श्री वैष्णव नही बन जाता तब तक वह भगवान् की प्राप्ति करने का सर्वथा अनधिकारी है ।

मनुष्य भगवत्प्रेम रखते हुए भी यदि इन जगतपावन प्रभु मन भावन पञ्च संस्कारो का परित्याग करे तो प्रभु उस पर अवश्य नाराज होते हैं। और उसका परित्याग कर देते हैं ब्राह्मशास्त्र में श्री मुख वचन है।

यो न धारते मर्त्यो मामकं चिन्हमीदृशम् ।
तं त्यजामि दुरात्मानं मदीया ज्ञाति लङ्घिनम् ॥

जो मनुष्य इस प्रकार का मेरे दिव्य चिन्ह को धारण नही करता है। उस दुरात्मा को मेरी आज्ञा का सतत उल्लङ्घन करने वाले का मैं परित्याग कर देता हूं॥

लोक में भी देखा जाता है कि प्रत्येक राज सेवक अपने अपने अधिकार के अनुसार राज पोषाक पहिरते हैं। एक साधारण सिपाही से लेकर राज के प्रधानमन्त्री तक सब कोई राज से मिले हुए पोषाक पहिरने के बाद ही राज कृत्य करते हैं खुद बादशाह भी जब कचहरी में तथा राज सभा में बैठेगा तब वह भी अपने वस्त्र भूषण पहिर करके ही बैठता है। यदि सिपाही अन्य कर्मचारी तथा मन्त्रीगण इस नियम का पालन न करें तो वे भी दण्डनीय समझे जाते हैं और बिना कुछ राज्य चिन्ह लिये कार्य करेगें तो प्रजा उनकी एक नही सुनती और कुछ भी भय नही मानती : यह नियम है।

उपरोक्त शास्त्र वचनों से पञ्च संस्कार प्राप्त करने की आवश्कता विदित हो जाती है। हमारे कितने भाई कहा करते हैं कि कंठी तिलक छाप धारण करने की क्या जरूरत ? हार्दिक भगवत्प्रेम होना चाहिये ।

मित्रो ? ठीक है। प्रेम सर्व प्रधान है परन्तु इन बाह्य चिन्हो की भी आवश्यकता अवश्य रहती है । विना वाह्य चिन्हो के भी गुजारा नही है। एक पतिव्रता पत्नी अपने पति देव में पूर्ण प्रेम रखती है। हरेक तरह उसे प्रसन्न रखती है। और हरेक तरह सेवा में तत्पर रहती है। अब यदि वह पति परायण पत्नी यह विचार करे कि मुझे श्रीपति चरणो में प्रेम तथा श्रद्धा है। मैं अपने प्राणाधार पति को छोड़कर पर पुरुष का मुख देखना पाप समझती हूं। अर्थात् मैं अनन्य पति सेवा परायण हूं मेरा यह स्वाभाव मेरे पतिदेव भी जानते ही हैं, अब जो मैं ये सौभाग्य प्रदर्शक आभूषणादिको को धारण न करूं तो क्या हर्ज है ? यों विचार कर यदि वह पत्नी अपने सौभाग्य दर्शक चिन्हो का परित्याग करदे तो उस पर इस कर्तव्य से उसका पति प्रसन्न होगा ? कभी नही होगा, वह यही कहेगा कि मेरे जीते जी तूने विधवावेश का ग्रहण किया क्या तू मुझे मुर्दा समझती है ? यो कह कर वह अवश्य रञ्ज होगा और आगे के लिये ऐसा काम न करे इस लिये शिक्षा भी ज़रूर देगा।

मैं कांग्रेस से बहुत प्रेम रखता हूं हृदय में मुझे कांग्रेस प्रति पूर्ण श्रद्धा है परन्तु यदि मैं उसका सदस्य होते हुए यह कहूं कि "खादी पहिरने से क्या ? यह तो वाह्य चिन्ह है. तिरङ्गा झण्डा उठाने से क्या ? यह तो लोगो को दिखलाने के वास्ते वनाबटी चिन्ह है तो मेरे अन्य कांग्रेसी भाई, अवश्य नाराज होगें महत्मा गांधी जी भी जरूर कहेगें कि इसे यदि देश से तथा कांग्रेस से प्रेम है तो खद्दर तथा झन्डा से नफरत क्यों ? और भी देखो स्वाराज्य की निशानी तिरङ्गा झन्डा अव उस दो पैसे के झन्डे के वास्ते प्राणदेने की तुम्हें क्या जरूरत ? उसके वास्ते वर्षो जहल जानेकी क्या आवश्कता मार पीट सहने से क्या मतलब ? एक झंडा छीन लिया गया तो फिर दूसरा तैयार न हो सकेगा ? तैयार होजायगा फिर उसके लिये इतना क्यों ? उत्तर मिलता है कि उसकी इज्जत ही हमारी तथा देश की इज्जत है । उसका अपमान ही हमारा तथा देश का घोर अपमान है। वह हमारा तथा देश का विजय चिन्ह है इस लिए।

मित्रो ! ठीक यही बात यहां क्यों नहीं समझ लेते ? यदि एक मनुष्य भक्त होते हुए, भगवत्प्रेम रखते हुए श्रीवैष्णवीय चिन्ह नहीं धारण करता है तो वह भक्त

समाज में तथा भगवान् की दृष्टिमें ,माननीय नही जँचता । अतः तिलक मालादिक बाह्य वेषभी धारण करनेकी आवश्यकता पड़ती है । जैसे खद्दर पहिनते हुए देश के हितको चाह न हो तो ठीक नहीं तथा देश हित चाहते हुए खद्दर न पहिनना ठीक नहीं, वैसेही तिलक, माला; रखते हुए भगवत्प्रेमी न बनना ठीक नहीं, तथा भगवत्प्रेमी रहते हुए तिलक, माला धारण न करना ठीक नहीं समझा जाता है। तथा जैसे तिरङ्गे झण्डेका मानापमान ही अपना तथा देश का मानापमान समझा जाता है वैसेही तिलक, मालाका मानापमान अपना तथा भगवान् का मानापमान समझा जाता है, इसीलिए भक्तलोग तिलक, माला के वास्ते अपने प्राण तक समर्पण कर देते हैं। तथा तिलक. माला की निन्दा सुनते असह्य वेदना का अनुभव करते हैं। अतः विज्ञों का काम नही है कि सरल हृदय भक्तों का नाहक कलेजा दुखावें, क्योंकि जैसे झण्डे के अपमान से देश प्रेमी को दुःख होता है वैसे इनके अपमान से भक्तों को तथा भगवान् को दुख होता है ।

श्रुति भी श्रीगुरु शरण होकर दीक्षा ग्रहण करने के लिये अदेश देती है।

सगुरुमेवाभि गच्छेत्समित्पाणिः
श्रोत्रियम् ब्रह्मनिष्टम् ।

वैष्णव जन जब तक प्रभु के दिव्य चिन्हों से चिन्हित नही होते पञ्चसंस्कार सम्पन्न नही होते तव तक वे वैष्णव नही कहला सकते, उनको देखकर पाप ताप सन्तापादि उत्पात काम क्रोधादिक भगवद्द्रोही नाश नही पाते, यम के दूत देखकर भाग नही जाते क्योंकि वे लोग समझते हैं कि यह तो प्रभू प्रिय भगवत्प्रेमी नही है । यदि भगवान् के चरणों में इसका प्रेम होता तो भगवदीय चिन्हों में भी इसको अत्यन्त प्रेम होता और सर्वदा धारण करता क्योंकि प्रियतम की नजीवी चीज भी प्रेमीको परमादरणीय होती है (लैला का एक तुच्छ कुत्ता भी मजनू के गले का हार हो गया था) परन्तु जब इस को प्रभुके दिव्य चिन्हों से प्रेम ही नही है तवये भगवत्प्रेमी कैसा ? यों समझकर सब उसे त्रास देते हैं। परन्तु जो पञ्चसंस्कार सम्पन्न होता है उसे देखकर ताप पाप, सन्ताप, काम, क्रोध,, लोभ, मोह, यम गण तथा स्वयं यमराज भयभीत हो जाते हैं और हाथ जोड़ कर उसकी आज्ञा पालन के लिये सर्वदा हाजिर रहते हैं। श्री विष्णुपुराण का पवित्र वाक्य है।

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं ।
जपति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥
परिहर मधुसूदन प्रपन्नान् ।
प्रभुमहमन्य नृणामवैष्णवानाम् ॥

,जब यमगण पाश हाथ में लेकर पापी जीवों को यम पुरमें लेआने के लिये चलने लगते हैं तब यमराज अपने पुरुषों को पास में बुलाकर प्रियवाणी से समझाकर कहते हैं कि हे दूतो! मैं प्रभू के प्रिय भक्तों को छोडकर अन्य देहधारियों का मालिक हूं, अतः तुम लोग खूब सावधानी से काम करना किसी भगवत्प्रपन्न प्रभू भक्तों को मत पकड़ना इसी में हमारा तथा तुम लोगों का परम कल्याण है।

कितने भाइयों का कहना है कि तिलक, कण्ठी धारण करना मात्र ढोंग है, वैष्णवों का वेष बना करके जगत् को ठगना ही आजकाल के भक्तों का वैष्णवों का एकमात्र कर्तव्य है।

अवश्य आजकल श्री वैष्णवसमाजकी दशा परम शोचनीय होगई है, परन्तु अभीतक इस समाज में अनेकों ऐसे रत्न पड़े हुए हैं जो जगत् को अपने पवित्र सदाचरण द्वारा तीव्र वेगेन प्रभु परायण बना रहे हैं।

मनुष्य भलेही कितना दुराचरणी हो परन्तु यदि वह भगवत्प्रपन्न होजाय, पञ्चसंस्कार सम्पन्न होजाय तो वह बहुत थोड़े समय में परम सदाचरणी बन सकता है। जिसके गले में कण्ठी होगी, ललाटमें पवित्र ऊर्ध्वपुण्ड्र होगा, वह समाज के भयसे, धर्मके भयसे, तथा ईश्वर के भयसे

बहुत कम पाप करेगा, उसके मनमें स्वतः यह चिन्ता हो जाती है कि मैं इस पवित्र वेष को धारण करके यदि अपवित्र दुष्कृत्य करूंगा तो जनता मुझे क्या कहेगी? ईश्वर मेरे पर कितना नाराज होगा, मुझे, लोग, ढोंगी, पापो, अधर्मी कहने लगेगें, अतः मेरा यह कर्तव्य है कि इन पापाचरणों से सर्वदा दूर दूर रहूं। प्रत्येक धर्म प्रेमी हृदय में ये विचार आये विना नही रह सकते, यदि अज्ञान वशात् कोई अपराध वन पड़ेगा तो भी वह अन्त में इसी दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके प्रभू के सामने एकान्त मे वैठकर रोवेगा और अपने पापों की माफी मांगेगा। विशेषता तो यह है कि कण्ठी तिलक धारण करके कोई व्यभिचार करेगा तो लोग झट कहेगें कि वाह भगत जी! यह तुम्हारा कर्तव्य है? धिक्कार है। यदि झूठ बोलेगा तो वाह! कन्ठी बांधकरके झूठ बोलतेहो। अर्थात् हरेक वात में पग पग पर जनता द्वारा उसे शिक्षा मिलती रहती है और हृदय भी कह देता है तुम वैष्णव हो तुम्हारा यह कर्तव्य नही है इस प्रकार मनुष्य बहुत थोड़े समय में पाप मुक्त होजाता है, गीता मे भगवद्वाक्य है कि "क्षिप्रं भवति धर्मात्मा" मेरा भक्त मेरा शरणागत वहुत शीघ्र धर्मात्मा वनजाता है अतः पापों से वचने के लिये शुद्ध धर्मात्मा वनने के लिये पञ्चसंस्कारो से सम्पन्न होना अत्यावश्यक कार्य है।

वैष्णव वेष भगवद्भक्तिमानका एक प्रधान चिन्ह है। यदि समय के खोटे प्रभाव से आज इस भाव में परिवर्तन हुआ, अथवा इस वेष को धारण करने वाले कुछ व्यक्ति दुराचरणी निकले तो इस लिये इस पवित्र वैष्णवधर्मको ही कलङ्कित करना या इस वेष भूषा के धारण करने वाले सब ही बद चलन के होते हैं ऐसा समझना नितान्त अज्ञता है, क्योकि व्यक्तिगत दोष के कारण समाज या देश कलङ्कित नही माना जाता है परन्तु वह व्यक्ति ही समाज की तथा देश की दृष्टी से घृणा का पात्र समझा जाता है। जगत्पूज्य महात्माजी का मत है कि "खादी आत्म शुद्धि की निशानी है। अब यदि कोई खद्दर धारी महाशय खोटे मार्ग में प्रवृत्त हो तो खादी कलङ्कित नही मानी जायगी, देश खादी का परित्याग न कर देता है, न कर देगा परन्तु खादी पहिर कर देश द्रोही तथा धर्म द्रोही वनने बाला मनुष्य ही घृणास्पद तथा वर्जनीय समझा जा सकता है। ठीक यही बात यहां पर भी समझ लेनी चाहिये मनुष्य को यथार्थ रीति से न पहचान कर केवल वैष्णव वेष देखकर भड़क जाना तथा व्यङ्ग वचनों द्वारा आगन्तुक अपरिचित व्यक्ति के हृदय को दुखाना सभ्य लोगों का काम न होना चाहिए जैसे खादी पहिरने वाले लोगो को आंख की शर्म से वहुत कुछ वद—चलन से बचते है वैसे श्री वैष्णव वेषधारी मनुष्य यदि हृदय का शुद्ध न भी हो तो भी वह धारण किये हुए वेष की लज्जा रखनेको भी सेकड़ों वार पापों से वचता ही है।

बनावटी वेष धारण करने से भी मनुष्य को कैसा ज्ञान प्राप्त होजाता है उसका एक दृष्टान्त पाठकों की सेवा में निवेदन करता हूं।

एक भङ्गी राज महल में नित्य झाड़ू लगाने जाया करता था, एक दिन अकस्मात् उसने राज महल के कोठे पर ताका तो परम सुन्दरी नव यौवना राज कुमारी पर उसकी दृष्टि पड़ी, दृष्टि पड़ते ही उसकी बुद्धि काम वासना से कलुषित हो गई, वह अपना कार्य जैसे तैसे समाप्त करके घर पहुंचा, घर जाकर एक आश्चर्यमयी दशा में पड़ गया, उसके चेहरे को देखकर उसकी औरत ताड़ गई कि हो न हो आज इसने राज कुमारी को देख लिया, और इसी लिये इसका मन इतना विरह विकल हो रहा है। अब क्या करना? यदि राजा को इस बात का पता चला तो मेरे प्राणाधार पति को प्राणदण्ड दे देगा, कहां हम नीच प्राणी और कहां एक देश दुनिया के मालिक की लड़की? हाय परमात्मा तेरी माया बड़ी विचित्र है, ऐसे-ऐसे विचार तरङ्गों मे उसकी दिन रात कल्प समान व्यतीत हुई, भंगी भी प्रेम विरह की पीड़ामें व्याकुल तड़फता हुआ ऐसे ही विचारों के प्रवाह में बहने लगा।

सुबह हुआ उसकी औरत राज महल में झाड़ू लगाने गई बड़ी पैरवी के बाद राजकुमारी से भेंट हुई, भंगिनने अपना समस्त रोना रो सुनाया और कहा कि अब दोनों तरह

उसका मरण है अब उसके जीवन मरण की डोरी आप के हाथ है जैसा आपको उचित जंचे वैसा करें।

राज कुमारी बुद्धि मान् और दयालु थी, उसने शोच बिचार करके कहा कि अपने पति से जाकर कह देना कि वह खूब अच्छे साधू का वेष वना कर तलाव के किनारे जा बैठे किसी से भी वोले नही, कोई कितना भी धन माल चढावे हाथ छुवावे नही और आंख से देखे नही, मुख से अखण्ड राम नाम जपा करें। इस तरह एक महीना करे मैं उससे अवश्य मुलाकात करूंगी।

भंगिन तो परमानन्द को प्राप्त करके हर्षित हो घर आयी और राजकुमारी की शिक्षा अपने पति को प्रेम सहित समझा दी। भंगी वड़ा प्रसन्न हुआ और उसके कहने के माफिक साधू का वेष वनाकर तलाव के किनारे वड़के पेड नीचे धूनी लगाकर बैठ गया कोई आता है जाता है तो किसी से वोलता नही है। किसी के सामने ताकता नही है। प्रभु का नाम लेता हुआ वहीं बैठा भजन करने लगा।

धीरे धीरे शहर भर में हल्ला पड़ गया कि एक मौनी जी महाराज पधारे हैं, किसी से न वोलते हैं, न किसी के सामने ताकते हैं, धन माल खाना पीना छूते भी नही हैं, बस केवल राम नाम रटा करते हैं। बड़े सिद्ध महात्मा हैं।

बस, तमाम शहर उनके दर्शन को उलट पड़ा सैकड़ों हजारो, और लाखो मनुष्यों की भीड़ प्रति दिन होने लगी शेठ शाहूकार धनी रहीस सब दर्शन को आने लगे, दो चार बार राजा भी दर्शन को गया, भंगी तो सिद्ध महात्मा होगया

जब सब कोई दर्शन को जाने लगे तब राज कुमारी ने भी अपनी माता से अपनी इच्छा दर्शाई, राणी ने सहर्ष जाने को कहा। राजकुमारी नें अपने साथ दो दासीयों कों ली और एक कनात चारों तरफ परदा लगाने को साथ ली और वड़े ठाट से दर्शन करने के लिये गई, राजकुमारी का आना सुन करके सब लोग अलग हो गये राजकुमारी ने चारो तरफ परदा लगाकर भंगी से पूर्व की सब बातें कह सुनाई और कहा कि अबतो आंखे खोल जिसके वास्ते तूने इतना ढोंग रचा है वह आ गई अब तू अपनी इच्छा पूर्ण कर।

राजकुमारी के इन वचनों को श्रवण कर भंगी हाथ जोड़कर बोला कि मातो तुमतो वही हो जिसके लिये मैनें ये सारे काम किये परन्तु अब मैं वह नही रह गया इन थोड़े दिनों के भजन के प्रभाव से और तेरी अपार दया से मेरी बुद्धि शुद्ध हो गई अब कृपा कर और मुझे आशिर्वाद दे कि मेरी सर्वदा ऐसी ही शुद्ध बुद्धि बनी रहे। तेरे उपदेश द्वा-

रा ही मैंने यह शुभ कार्य हाथ में लिया है अतः आज से तू मेरी गुरु भई और मैं तेरा शिष्य ॥

देखा, क्या पवित्र रहस्य भरा है इस भगवान् के दिव्य बेष में ? एक नीच अधम भंगीभी प्रभू भजन तथा प्रभू के प्यारे भक्तों के श्री बैष्णव वेष धारण करने से कितने ऊंचे दर्जे पर चढ़ गया उसका यह आदर्श और परमोज्ज्वल दृष्टान्त है । एक भक्तने ठीक ही कहा है कि --

संसकार पांचौ सुभग, हेतु रहित हितकार ।
भुक्तिमुक्तिरति भक्तिप्रद, सांचे सरल उदार ॥

पञ्च संस्कार के अधिकारी ।

भगवच्छरणागति में प्राणि मात्र का अधिकार है । शरणागति के अनेकों भेद महर्षिगणों ने अपनें अपने ग्रन्थों में वर्णन किये हैं परन्तु उन महर्षियों ने कायिकी प्रपत्ति वर्णन करते ।

प्रणामाङ्कन मुख्येन न्यास लिंगेन केवलम् ।
गुर्वधीना हि भवति प्रपत्तिः कायिकी क्वचित् ॥

उसी तरह मानसी प्रपत्तिमें भी—

न्यास लिङ्गवतांगेन धियार्थज्ञहृद्य मन्त्रतः ।
उपासित गुरोः सम्यक् प्रपत्तिर्मानसो भवेत् ॥

इत्यादि प्रमाणों से साफ विदित हो जाता है कि भगवत् प्रपन्न को पञ्च संस्कारों से सम्पन्न होना आवश्यक है अन्यथा सम्पूर्ण प्रकार से शरणागत नहीं कहला सकता। हमारे श्रीवैष्णव समाज में तो यह प्रथाही प्रचलित है कि जिस दिन मनुष्य श्रीगुरुजी महाराज द्वारा संस्कार प्राप्त करेगा उसी दिन उसे कहा जायगा की अब आप भगवच्छरणागत हुए। शरणागत भी उसी दिन को उद्देशित करके कभी बात चीत करते समय यह कहते हैं कि जिस रोजसे हम शरणागत हुए तब से आज तक ऐसा किया, ऐसा नहीं किया इत्यादि इससे यह मालुम होताहै कि बिना पञ्चसंस्कारके भगवत्प्रपत्ति दृढ़ नहीं होती। और हमने मन प्रभूको दे दिया बचन से भी उनके नाम तथा यशका गान किया किन्तु अपने शरीर को यदि छिपाये रहेंगे पञ्चसंस्कार से संस्कृत न करेंगे, तप्त मुद्राका कल्याणकारक ताप सहन करके दैहिक तथा आन्तरिक पाप तथा तापों का बिनाश न करेंगे तब तक हम शरणागत कैसे? अतः पञ्चसंस्कारसे संस्कृत होना तथा अपनी आत्माको प्रभु चरणों पर न्यौछावर करनाही भगवच्छरणागति है। जिस को भगवत्प्रपत्तिका अधिकार है उसे पञ्चसंस्कारका अधिकार स्वतः प्राप्त होजाता है। शास्त्रावलोकन करने से सरल सात्विक हृदय वाले मनुष्यों को विद्वानों को यह स्पष्ट मालूम होजाता है कि भगवत्प्रपत्तिमें सर्वाधिकार है। नियताधिकार का यहां नामोनिशान नहीं है। यही बात पञ्च संस्कार प्राप्त करने के

लिये भी है अर्थात् इसमें भी सर्वाधिकार है।

शास्त्र तो मुक्त कण्ठ से घोषणा कर रहे हैं —

प्राप्तुमिच्छन्परां सिद्धिं जनः सर्वोऽप्यकिञ्चन ।
श्रद्धया परया युक्तो हरिं शरणमाश्रयेत ॥
न जाति भेदं न लिंगं न कुलं न गुण क्रियाम् ।
न देशकालौ नावस्थां योगोह्ययमपेक्षते ॥
ब्रह्म क्षत्र विशः शूद्राः स्त्रियश्चान्त्यजास्तथा ।
सर्व एव प्रपद्येरन् सर्व धातारमच्युतम् ॥

"जिसको परम सिद्धि प्राप्त करने की पावनाकांक्षा हृदय में हो" वे सब परम श्रद्धा सम्पन्न होकर निखिल जगच्छरण्य सर्वेश्वर प्रभु के चरण का आश्रय ग्रहण करें। यह श्रीशरणागति योग, यह श्रीवैष्णव धर्म, जाति भेद, लिङ्ग भेद, कुल, गुण, क्रिया, देश, काल अवस्था किसी की भी अपेक्षा नहीं रखता, इस को किसी की परवाह नहीं यह परम स्वतन्त्र मार्ग है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, अन्त्यज, सब कोई सब काल में हर अवस्था में पतित पावन परमेश्वर के पवित्रतम चरणों की शरण आ सकते हैं। श्रीवाल्मीकि रामायण में भगवत्प्रतिज्ञा है —

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतंमम ॥ वा०युद्ध

जो एक बार भी मेरे सम्मुख आकर दीन होकर हार्दिक भाव से कह देता है कि "हे नाथ ! मैं तेरा हूं" तो मैं उस को समस्त भूत प्राणिमात्र से अभय कर देता हूं प्रभू का यह भी वचन है कि "मैं समस्त प्राणियों को जो मेरे शरण आते हैं उनके लिये अभय बरदान देता हूं । यह मेरा प्रतिज्ञा है । भगवती श्रीसीताजी ने भी पवन पुत्र श्रीहनुमान जी से साफ कहा है —

पापानां वाऽशुभानां वा वधार्हाणां प्लवंगम ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ वा०युद्ध

हे प्लवङ्गम ! पापियों पर अशुभ कर्तव्य करने वालों पर, वधार्हों पर , [मार डालने लायकों पर) भी प्रेम करना, उनको करुणापूर्ण नेत्रों से अवलोकन करना यह आर्यों का (श्रेष्ठ पुरुषों का) कर्तव्य है। अपने आश्रित शरणागत किसी भी जीव को हीनातिहीनों को भी श्रेष्ठ पुरुष दयाभाव से ही देखते हैं ।

कितनी भारी उदारता भरी पड़ी है जिगज्जननी के परमोदार हृदय में ! अवश्यही माता का हृदय कुपुत्रों पर भी प्रेम करुणा, तथा दया का ही वर्षा वर्षाता रहता है । श्रीमद्भगवद्गीता में भी —

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥

(गीता – ९–३२)

हे पार्थ ! स्त्री, वैश्य, शूद्र, तथा इनसे भी ज्यादा पाप योनियों में जन्म लेने वाले भी मेरी शरण गति का आश्रय ग्रहण कर के भवसागर से पार हो जाते हैं और परम गति को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं । पुनः

*** सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।**
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥

गीता १८–६२

नोट—इस श्लोक की विस्तार पूर्वक भाव पूर्ण रसमयी व्याख्या बांचने की इच्छा हो तो ग्रन्थकर्ता का रचा गीता गुह्यतमोपदेश' अर्थात् गीता प्रतिपादित शरणागति योग, नामक पुस्तक अवश्य अवलोकन करें ।

—प्रकाशक ।

हे अर्जुन ! तू समस्त धर्मों का परित्याग करके केवल मेरी शरणागति को ग्रहण कर, सच्चा श्रीवैष्णव बन जा, यदि तुझे यह शङ्का हो कि सामान्य धर्मों का परित्याग करने से मुझे पाप लगेगा तो इस लिये चिन्ता मत कर, मैं तुझे समस्त पापों से विमुक्त कर दूंगा । इसकी व्याख्या में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी ने साफ लिखा है -

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज, इत्यग्नि होत्रादि सर्वाश्रम धर्म परित्याग पूर्वक भगवदेक शरणस्य । भगवदेकोपायस्य ब्रह्मसंस्थस्याश्रमा-न्तरेभ्यः पृथक् कृत्याभिहितत्वात् । तस्मात्त-त्सदाश्रमधर्मेऽरुचिमतः परम विरक्तस्य परम पुरु-षैक चिन्तकस्य तदेक शरणस्य ज्ञानि भक्तस्य सर्वाश्रम श्रेष्ठतया गीताशास्त्रेऽसकृदुच्चारणत्वा-त्परमात्मानुरक्ति रसिकः स एव विरक्ताश्रमो-ऽनुष्ठेयो मुमुक्षुभिः ।' (आनन्द भाष्य)

अग्निहोत्रादिक समस्त आश्रम धर्मों के परित्याग पूर्वक एक मात्र भगवानके ही जो शरण हैं, जिसका एकमात्र भगवान ही उपाय हैं ऐसे ब्रह्मसंस्थ को आश्रमान्तरों से पृथक् कहा गया है। अतः उन वर्णाश्रम धर्मों के पालन

करने में अरुचि रखने वाला, परम विरक्त, परम पुरुष प्रभु के स्मरण में मग्न, प्रभु शरणागत, ज्ञानी भक्त को श्री गीता शास्त्र में बारम्बार सर्व वर्णाश्रम धर्म पालन तत्पर लोगों से परम श्रेष्ठ बतलाया गया है अतः परमात्मा के प्रेममें पगे हुये रसिक भक्तों को इस विरक्ताश्रम का (श्रीवैष्णव धर्म का) अनुष्ठान करना चाहिये । मुमुक्षुओं का यही एक मात्र कर्तव्य है ।

श्रीरामप्रसाद जी महाराज भी लिखते हैं —

परिशेषात् सर्व वर्णाश्रम धर्म त्याग पूर्वक भगवदेकशरणस्यानन्य चेतसा सातत्येन तदेक चिन्तकस्य तदेक गतेः ज्ञानिनो भक्तस्यैव ब्रह्म संस्थत्वात् ॥

(श्रीजानकी भाष्य)

पहिले तो सर्व धर्मान् परित्यज्य, इसका अक्षरशः आनन्द भाष्य के अनुसार भाष्य लिख के आगे पृष्ठ ४८१ में लिखते हैं कि' परिशेषात् यह सिद्ध होता है की सर्व वर्णाश्रम धर्म परित्याग पूर्वक भगवदेकशरण अनन्य भाव से सतत प्रभु का स्मरण करने वाला, प्रभु ही जिसकी एक मात्र गति है' ऐसा ज्ञानी भक्त ही ब्रह्म संस्थ है। भाष्यकार के इस वाक्य से साफ मालुम पड़ता है कि श्रीवैष्णव धर्म वर्णाश्रमादिक सामान्य धर्मों की अपेक्षा नहीं रखता है तथा इस श्रीवैष्णवधर्ममें सर्वा-

धिकार है। श्रीरामतापनी, श्रीरामस्तवराज, श्रीरहस्यत्रय, इत्यादि अनेक ग्रन्थों के भाष्यकार महात्मा श्रीहरिदासजी श्रीरामतापनी उत्तरार्ध में लिखते हैं ।

"अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे,,। इति श्रुत्याजन्तुमात्रस्याधिकारित्वद्योतनात् ।

पुनः य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते ॥

इस पर लिखते हैं कि —

अत्र ब्राह्मण शब्दो ब्रह्म बुभुत्स्वर्थकः
नतु ब्राह्मण जाति परः ॥
शुचिव्रततमाः शुद्रा धार्मिका द्विज सेवकाः ।
स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ॥
लोकाश्चाण्डाल पर्य्यन्ता सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः।
स्वजाति कर्म निरता भक्ताः सर्वेश्वरस्य ये ।
इत्यगस्त्य संहितायां चाण्डाल पर्यन्तस्यषडक्षराधिकारित्वोक्तेः।

"य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते । इसमें जो ब्राह्मण शब्द है वह ब्रह्म को चाहने वाले जीवों के लिये है ब्राह्मण

जाति परक नहीं है क्योंकि "शुचि व्रत पालन करने वाले सच्छूद्र द्विज सेवक तथा धार्मिक शूद्र पतिव्रता स्त्री अन्य प्रतिलोम अनुलोमादिक पाप योनि समुत्पन्न चाण्डाल पर्यन्त समस्त जीवों का इसमें अधिकार है स्वजाति कर्म निरत तथा ईश्वर भक्त प्रत्येक जीवों को इसका अधिकार है इस अगस्त्य संहिता के बचन से चाण्डाल पर्यन्त प्रत्येक सज्जन को षडक्षर मन्त्रराज का अधिकार है। यह बोधित होता है।

हारीतेऽप्युक्तं तथैव —

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथाऽपरे ।
सर्वेप्यत्राधिकारिणोऽस्य ह्यनन्य शरणा यदि ॥
गर्भ जन्म जरा मृत्यु तारकं सर्व देहिनाम् ।
स्वभक्त वत्सलं राम मन्त्रं सम्यगुपास्महे ॥

हारीतस्मृति में भी इसी तरह कहा गया है कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, तथा इतर अन्त्यजादिक सबको इस तारक मन्त्र प्राप्त करने को अधिकार है यदि सब प्रभु शरणागति स्वीकार करें तो, सब इसके अधिकारी हैं। गर्भ, जन्म' जरा, मृत्यु' रूप संसार से समस्त प्राणी मात्र को तारने वाला' भक्त वत्सल श्रीराम -मन्त्र की हम उपासना करते हैं ।

श्रीनारद पञ्चरात्रोक्त भारद्वाज संहिता में भी —

बाल मूक जडान्धाश्च पंगवो बधिरास्तथा।
सदा चार्य्येसन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परांगतिम् ॥

बाल, मूक, जड़, अज्ञानी, अन्धे, पङ्गु, बहिरे, तथा अन्य हरेक गये बीते प्राणी भी सद्गुरु के बतलाये हुए श्रीवैष्णव धर्म का पालन करते हैं पञ्चसंस्कार से संस्कृत होते हैं तो वे सब भी परम गति को प्राप्त कर लेते हैं ।

ब्रह्म पुराण मे श्रीभगवद्वचन है —

मद्भक्ताः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथान्त्यजाः।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक् श्रद्धा समन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा ॥

" मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, तथा अन्त्यज भी परम सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं तव फिर आप के सदृश द्विजोत्तमों का तो कहना ही क्या, श्वपच भी यदि मेरा भक्त है श्रद्धा सम्पन्न है तो वह भी अभिमत सिद्धि को शीघ्रही प्राप्त कर लेता है तव अन्य श्रेष्ठ कुलोत्पन्न यदि मेरी भक्ति करें तो उनका तो कहना ही क्या ?। श्रीगोस्वामीजी ने खूब कहा है

गये रामशरण सबको भलो।
गनि गरीब बड़ो छोटो बुध हीन मूढ़ बल अतिबलो।

पंगु अंध निर्गुणी निशंबल जो न लहै जाँचो जलो ॥
सो निबह्यो नीके जो जनमि जग, रामराज मारग चलो ।

पराशर स्मृति में भी लिखा है —

प्रथमं ताप संस्कारस्तापसैर्मुनिभिस्स्मृतम् ।
सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विजसत्तमाः ॥

समस्त आश्रम में बसने वाले, स्त्री; तथा पुरुषों को प्रथम ताप संस्कार लेना चाहिये ऐसा तपस्वी ऋषियों का तथा पविशान्तःकरण मुनियों का सिद्धान्त है ॥

महा रामायण में भी—

देशेषु सकलेष्वपि सर्वकाले,
वर्णाश्रमाश्च सकलाङ्कित पुण्यपुंजाः ।

किसी भी वर्णके तथा किसी भी आश्रम के मनुष्य किसी भी देश में अथवा किसी भी काल में तप्त धनुर्बाणाङ्कित होते हैं तो वे सब परम पुण्य पुञ्ज हो जाते हैं । ब्रह्माण्ड पुराण में श्रीमुख वाक्य है कि —

यो नरो मम भक्तस्तु दिव्यायुधानि धारयेत् ।
श्वपाको वाथ गोघ्नो वा ममलोकमवाप्नुयात् ॥

"जो मनुष्य मेरा भक्त है और मेरे दिव्यायुधों से जिसका अङ्ग चिन्हित है वह श्वपच हो अथवा तो गोहन्ता भी क्यों न हो ? उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें मेरे धाम की प्राप्ति करता है । इसी लिये तो सर्व शास्त्र मत समुच्चय रूपेण यह वाक्य कहा गया है —

सर्वेषामधिकारो वै ज्ञातव्यो दैशिकोत्तमैः ।
इत्याद्याः श्रुतयः सन्ति स्मृतयश्च सहस्रशः ॥

इस परमोदार, परम समर्थ, महा पातकियों के पाप पुञ्जों को एक निमिषार्ध मात्र में समूल नाश करने की महान् समर्थता सम्पन्न वैष्णव धर्म का अधिकार प्रत्येक जीवों को है ऐसा श्रेष्ट आचार्य पुरुषों को समझना चाहिये । इस मत की पुष्टि के लिये वेद में सहस्रों श्रुतियां है और अन्य धर्म शास्त्रों मे प्राचीन धर्माचार्यों के हजारों बचन हैं । श्रीमद्-भागवत में भी —

ते वै विदन्त्यति तरन्ति च देवमायां
स्त्री शूद्र हूण शबरा अपि पाप जीवाः ॥
यद्यद्भुत क्रम परायण शील शिक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमुत श्रुतधारणा ये ॥

परम दयालु दीनबन्धु प्रभु के गुण गान में परायण प्रभु भक्त जीव यदि स्त्री हों हूण शबर, आदिक पाप योनियों में समुत्पन्न हो, पशु पक्षी हों तथापि वह महान् देव-माया के रहस्यों को यथार्थ समझ कर उसे तर जाते हैं। तब यदि वेद वेदान्त ज्ञाता, विप्रादिक, उच्च कुलोत्पन्न प्रभु भजन करें तो वह माया को तर जाँय इस में क्या आश्चर्य ?

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्या शूद्रा स्त्रियोन्त्यजाः।
सर्वेधिकारिणोह्यत्र विष्णु भक्तो यथा नृप ॥

हे नृप ! विद्याधर मनुष्यों में वैश्य शूद्र स्त्री अन्त्य-जादि सब कोई इस शरणागति के परमाधिकारी हैं जिस तरह विष्णु भक्तों को श्रीवैष्णव धर्म पालन करने का सम्पूर्ण अधिकार है उसी तरह अन्य जीवों को भी है।

ब्रह्म रात्र में भी —

ऊर्ध्व पुण्ड्रेण संयुक्तो म्रियते यस्तु मानवः ॥
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥

ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किया हुआ मनुष्य यत्र कुत्र कहीं भी यदि मरण प्राप्त करता है तो वह भले चाण्डाल भी क्यों न हो परन्तु परम विशुद्धात्मा बन जाता है और विष्णुलोक

प्राप्त करता है। श्रीरामतापनी उपनिषद् में तो श्रीमुख वचन है कि —

कृमि कीटादयोऽप्याशु मुक्ता सन्तु न चान्यथा ।

कृमी और कीट भी श्रीराम मन्त्र श्रवण करके मुक्त हो जायगे यह मेरा वाक्य कभी अन्यथा हो ही नही सकता ।

सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी के श्रीमुख वाक्य से यह सिद्ध है कि कृमी, कीट तक को श्रीराम मन्त्र प्राप्त करने का अधिकार है। भाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्द स्वामीजी के वाक्य से भी सिद्ध होता है विरक्ताश्रम तथा श्रीवैष्णवाश्रम में भगवच्छरणागति में वर्णाश्रम धर्म की तथा अन्यान्य सामान्य धर्मों के पालन की कोई खास जरूरत नहीं, उन धर्मोंके पालन से करोड़ों गुण अधिक फल यह श्रीवैष्णवधर्मके पालने वाले प्राप्त कर सकते हैं उन्होंने तो श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में साफ कहा है —

प्राप्तुं परांसिद्धिमकिञ्चनोजनो
द्विजादिरिच्छञ्छरणं हरिं व्रजेत् ।
परं दयालुं स्वगुणानपेक्षितम्
क्रियाकलापादिक जाति बन्धनम् ॥

मोक्ष स्वरूप परम सिद्धि प्राप्त करने की कामना वाले अकिञ्चन द्विजादिक प्रत्येक वर्णाश्रम वाले मनुष्यों को परम दयामय वात्सल्यादि गुण पूर्ण शरणागत वत्सल प्रभु की शरण में चले जाना चाहिये, उन्हें प्रभु अवश्य सुखी करेंगे वहाँ पर प्रभु शरण जानेके लिये क्रिया कलाप तथा जात्यादि बन्धनों की तो बिलकुल आवश्यकता है ही नहीं ॥

इन सब शास्त्रीय वचनों से निर्विवाद सिद्ध होता है कि प्रभु प्रिय प्रत्येक मनुष्यों को पञ्च संस्कार प्राप्त करके शुद्ध श्रीवैष्णव बनने का सम्पूर्ण अधिकार है। इस लिये प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदायनिष्ठों को यह उचित है कि संसार के दुःखौघों से पीड़ित प्राणियों को इस परमोदार, परम समर्थ और परम सरल मार्ग का प्रदर्शन करा के दुःख मुक्त करें, क्योंकि सन्त महात्माओं का तो स्वभाव ही होता है कि ऊंच' नीच, बड़े, छोटे, सब कोई सुख सम्पन्न हो जावें।

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद्दुःख भाग्भवेत् ॥

जब ये पवित्र भावनायें आपके रोम-रोम में व्याप्त हो जाँयगी तभी हमारा आपका तथा जनता का परम कल्याण होगा।

जिसको श्रीप्रभु चरणों में प्रेमहो, शान्त चित्त हो आस्तिक हो, धर्मशास्त्रों में जिसकी श्रद्धा हो, भगवत्प्रेम, श्रीबैष्णव धर्म तथा भगवन्नाम माहात्म्य प्रतिपादक शास्त्रीय बचनों को अर्थवाद न मानता हो। प्रभु भक्तिकी महिमा को बर्णन करने वाले वाक्यों को "यह तो रुचिबर्द्धक वाक्य है ।" इसप्रकार कह कर अपनी जीभको आत्माको तथा सुनने वालेके श्रवणको अपवित्र करनेका घोर पाप न करताहो, भगवन्नामादिक माहात्म्य प्रतिपादक वाक्योंको सत्य-सत्य मानताहो श्रीवैष्णव जनों के चरणों में जिसका प्रेम हो, आचार्यपादकी आज्ञामें अपना परम कल्याण समझाता हो वही मनुष्य इन पञ्चसंस्कारों को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। जिसके हृदय में दया हो; गरीबों की पीड़ाको देखकर जिसका हृदय द्रवीभूत होता हो। जिसको अभिमान न हो, तृणसे भी अपने को नीच समझता हो, जात्याभिमान का तथा, धन यशादिक अभिमान का प्रेत जिसको न लगा हो। परम दीन, दुसरों को मान्यप्रदाता, अपने मानापमान में समान चित्त रखने वाला विज्ञ पुरुष पञ्चसंस्कारका अधिकारी है। उपरोक्त गुण जिसके हृदय भवन में बिराजमान हो वह भक्त नीच श्वपच कुलका भी क्यों न हो परन्तु उसे भगवद्भक्ति करने का सम्पूर्ण अधिकार है। उच्चकुलोत्पन्न, धन, यश सम्पन्नों को अभिमान त्याग करना एक कठिनसे कठिनतम कार्य है। एक जगह लिखाहैकि-

"सुईकी नोंकसे ऊंट तथा हाथी का निकल जाना सम्भव है परन्तु जाति, कुल, धन तथा यशके नशेमें चूर मानवोंका हृदय अभिमान शून्यहो उन्हें भी दीनता अच्छी लगे यह सर्वथा असम्भव है" ठीकहै आजकाल यह प्रत्यक्ष देखने को मिलता है, परन्तु निकृष्ट कुलोत्पन्नों में इसकी अत्यल्प मात्रा रहती है उन्हें सदुपदेश देने से वे शीघ्र सत्वगुण सम्पन्न हो जाते हैं और प्रभुके प्यारे बन जाते हैं यदि यही गुण हमारे उच्चाति उच्चोंमें आजावे और दीनोंको दुःखमें सहाय करें। अभिमानकी मात्रा कम करदें, निर्मूल ही करदें और श्रीवैष्णवधर्मका आश्रय ग्रहण करें। भगवान् श्रीरामकी छत्र छायामें आजावें तो वे भी शीघ्र ही प्रभुके प्यारे लाड़िले भक्त बन जा सकते हैं।

उपरोक्त कथनसे मेरा यह मन्तव्य नहीं है कि हरेक अन्त्यज प्रभु मन्दिरोंमें जाना ही चाहिये, अथवा हरेक अन्त्यज को पूज्य तथा आदरणीय मानना ही चाहिये, मेरी दृष्टीमें तो वही मनुष्य पूज्य आदरणीय और सर्व श्रेष्ठ है जिसको प्रभु चरणोंमें नैसर्गिक प्रेमहो। सच्ची श्रद्धाहो भले फिर वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल, राजा हो या रङ्क, मूर्ख हो या विद्वान्, ब्रह्मा हो या कृमी कीट परन्तु भगवद्भक्ति सम्पन्न परम माननीय है। और यदि उपरोक्त गुण न हुआ तो वह परम उच्च से भी उच्च कुलमें उत्पन्न क्यों न हो धुरन्धर

विद्वान् क्यों न हो, महा बलिष्ट क्यों न हो, देश दुनियां का मालिक क्यों न हो, परन्तु वह सज्जनों के भक्तों के श्रीवैष्णवों के समाज में पूज्य तथा आदरणीय नही ही हो सकता शास्त्र तो कहते हैं कि—

स कथं ब्राह्मणो यश्च हरिभक्ति विवर्जित. ।
सकथं श्वपचो भगवद्भक्तिर्यस्यास्ति मानसे ॥

अरे भाई ! वह ब्राह्मण कैसा जो भगवद्भक्ति विहीन कोरा कडाक अभिमानका पुतला बना हुआ हैं। और वह श्वपच कैसा जो प्रभु भक्ति सम्पन्न है । प्रभु भक्ति बिहीन ब्राह्मण ब्राह्मण कहलाने लायक नही है और प्रभु प्रेम सम्पन्न श्वपच गर्हित या घृणास्पद नही हो सकता प्रत्युत परमादरणीय है इस मार्गमें भक्तिका मुल्यहै, ईश्वरप्रेम तथा सत्यश्रद्धाका आदरहै। रुप, गुण, जाति, धन तथा बिद्याका नहीं। प्रभुसे प्रेम रखने वाले कृमीपर्यन्त इस उदारमार्गके पथिक बन-सकतें हैं। और प्रभु प्रेम रहित ब्रह्माका भी यहां पर कोई आदर नहीहै। हां अपनी नम्र भावसे बिभुषितान्तःकरण 'श्रीबैष्णव, अगजगमय प्रभुको समझकर भले वन्दनाकरें इस भावसे तो रजकणों को भी मान्य समझो जाती हैं। परन्तु यह बिद्वान् है धनीहै, उच्चकुलकेहै, इस आशयसे यहां (श्रीवैष्णवमार्गमें) आदर नहीहै। भक्तिके माने 'वन्दो सबहि रामके नाते, यहां सब का परमादर है।

पंच संस्कार प्रदाता।

पञ्च संस्कार किससे लेनें चाहिये ? पञ्च संस्कार प्रदाता कैसा होना चाहिये ? इसका भी ज्ञान प्राप्त कर लेना मुमुक्षु मनुष्य का कर्त्तव्य है। अन्यथा होने से मनुष्य दुःख भोक्ता बन जाता है, सच्छास्त्रों का सिद्धान्त है कि —

आलोच्य सर्व शास्त्राणि पुराणानि च वैष्णवः ।
तदर्थमाचरेद्यस्तु, स आचार्य इतीरितः ॥
आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारे स्थापयेच्चयः ।
स्वयमाचरते यस्मात्तस्मादाचार्य ईरितः ॥

जो श्रीवैष्णव समस्त शास्त्रों का मथन करके तथा समस्त पुराणों का सारांश समझ करके तदनुकूल अपना आचरण बनाता है वह आचार्य होने लायक है। समस्त शास्त्रों के सुन्दर अभिप्रायों को सञ्चय करके अपने हृदय में धारण करता है तथा स्वयम् तदनुसार आचार पालन करता है तथा दूसरों को भी उसी तरह पालन करने का आदेश देता है अतः उस श्रीवैष्णव को आचार्य कहा जाता है। पुनः

सत्सम्प्रदाय सम्पन्नं मन्त्र रत्नार्थ कोविदम्।
ज्ञान वैराग्य संयुक्तं सर्वधर्म विदाम्वरम् ॥
शुद्ध सत्व गुणोपेतं सदाचार निषेविणम्।
आचार्य संश्रयेत् पूर्वमनवद्य वैष्णवम् द्विजम् ॥

सत्सम्प्रदायानुयायी हो, मन्त्रार्थ के तत्वों को अच्छी तरह जानता हो, ज्ञान वैराग्य सम्पन्न हो, समस्त धर्मों के रहस्यों से ज्ञात हो, शुद्ध सत्वगुण सम्पन्न हो, सदाचरण पालन तत्पर हो, ऐसे अनवद्य परम पूज्य श्रीवैष्णव द्विजको आचार्य करना चाहिये और उसके चरणों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। श्रीनारद पंचरात्र में भी —

महा भागवतं तत्र आचार्य्यं वरयेत् सुधीः ।
*अर्थ पञ्चक तत्वज्ञाः पञ्च संस्कार संस्कृताः ।
प्रकारत्रय संपन्नास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥

सुन्दर बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि परम भागवत आचार्य का आश्रय ले, जो अर्थपंचक के तत्वों को पूर्ण तरह जानता हो, पञ्च संस्कारों से संस्कृत हो, और अनन्य शरणत्वादि प्रकारत्रय सम्पन्न हो उसे महा भागवत परम वैष्णव कहते हैं ऐसे ही श्रीवैष्णव को आचार्यत्वेन वरण करना चाहिये ।

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध में भी—

तस्मात् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय आत्मनः ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युप समाश्रयम् ॥

---

* नोट—अर्थ पञ्चक के तत्वों को यदि बिस्तार पूर्वक समझना चाहते हों तो " कल्याण कल्पद्रुम " नामक ग्रन्थ कर्त्ता का बनाया हुआ पुस्तक अवलोकन करें । पता तथा मूल्य टाइटिल पेज के अन्त के पेजमें देखें ।

—प्रकाशक ।

इस लिये प्रत्येक जिज्ञासु कल्याण कामुक मनुष्यो को उचित हैं कि वेद शास्त्रों के तत्वों को यथार्थतया समझाने वाले परब्रह्म(श्रीरामजी) के शरणागति का दृढ़ आश्रय ग्रहण करने वाले सद्गुरु के चरण शरण में जाय। पाद्मे—

अवश्यं वैष्णवीं दीक्षां प्रविशेत्सु प्रयत्नतः ।
दीक्षितस्य विशेषेण संसिद्धिर्नात्र संशयः ॥

अतः अवश्य ही श्रीवैष्णवी दीक्षा प्राप्त करनी चाहिये और श्रीवैष्णव मार्ग पर आरूढ़ होना चाहिये क्योंकि दीक्षीत मनुष्य बहुत शीघ्रही परम सिद्धि की प्राप्ति कर लेता है इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है।

नारद पञ्चरात्रेऽपि —

अन्य देवस्य दीक्षातः मुक्तिर्नैव कदाचन ।
वैष्णवीं च विना दीक्षां मुक्तिर्नैव च नैव च ॥

दूसरे देवताओं के मन्त्रों की दीक्षा से मनुष्य कभी मोक्ष प्राप्ति नहीं कर सकता है, अतः मनुष्य को अवश्यमेव श्रीवैष्णवी दीक्षा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए. अन्यथा मुक्ति प्राप्त नहीं ही हो सकती है।

गुरुवक्त्राद्विष्णु मन्त्रः यस्य कर्णे विशेत्परम् ।
जीवन्मुक्तं वैष्णवं तं वेदाः सर्वे वदन्ति च ॥

—ब्रह्मवैवर्ते—

श्रीगुरु महाराज के मुखारबिन्द से जिसके कर्णों में श्रीविष्णु मन्त्र [श्रीराम-मन्त्र] प्रवेश करता है वह श्रीवैष्णव जीवन्मुक्त है उसकी महिमा का गान समस्त वेद भी हमेशां किया ही करते हैं। इन बचनों से यह मालूम होता है कि मनुष्य को सत्सम्प्रदायानुयायी श्रीवैष्णव द्वारा पञ्चसंस्कार संयुक्त दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

धर्मार्थ काम मोक्षाणामालयः साम्प्रदायिकः ।
सम्प्रदाय विहीना ये मन्त्रास्ते निष्फलामताः ॥

—गौतमीयतन्त्र ।

सम्प्रदायं विना मन्त्रः सम्प्रदायं विना गुरुः ।
सम्प्रदायं विना नाम सर्वं भवति निष्फलम् ।

शाण्डिल्य संहिता ।

धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष का एकमात्र निवास-स्थान शुद्ध साम्प्रदायिकता है, सम्प्रदाय विहीन समस्त मन्त्र निष्फल हो जाते हैं। सम्प्रदाय बिना का मन्त्र, संप्रदाय बिनाका गुरु, सम्प्रदाय हीन नाम, यह सब निरर्थक तथा अनर्थक है। अतः जिसकी सम्प्रदाय परात्पर प्रभु से लेकर आजतक अविच्छिन्न रूपेण चली आती हो वैसे सद्वैष्णवाचार्य के शरण जाना चाहिये और उन्ही आचार्य चरणों से दीक्षा प्राप्त करनी चाहिये। अग्निपुराण २८३ अध्याय का वाक्य है कि —

यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाथ बलेनवा।
पत्रेस्थितं च गाथां च जानीयात्तनर्थकम्॥

"अपनी इच्छा से जहां तहां से सुन लिया छल करके या डांट डपट के मन्त्र प्राप्त किया, अथवा किसी पुस्तक में लिखा याद करलिया, किसी से बात चीत करते सुन लिया इन प्रकारों से प्राप्त मंत्र अनर्थकारक होते है अतः सत्सम्प्रदाय निष्ठ गुरुद्वारा ही मन्त्र लेना परमोचित है।

अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण न परागतिः।
अतश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद्गृह्णीयान्मनुम्॥

अवैष्णवों का उपदेश दिया हुआ मन्त्र प्राप्त कर लेने से मनुष्य परा गति प्राप्त नहीं कर सकता है अतः विधि पूर्वक श्रीवैष्णव से ही मन्त्र ग्रहण करना उचित है।

सहस्र शाखाध्यायी च सर्वं यज्ञेषु दीक्षितः।
कुले महति जातोऽपि न गुरुः स्यादवैष्णवः॥

पाद्मोत्तर खण्डे।

षट्शास्त्री अवेद्विप्रः वेद वेदाङ्ग पारगः।
अवैष्णवो गुरुर्नस्याद्वैष्णवः श्वपचो गुरुः॥

स्कन्द पुराण—

वेद की हजारों शाखाओं का अध्ययन कियाहो, समस्त यज्ञों मे यज्ञ दीक्षा प्राप्त हो, महान् सत्कुलोत्पन्न हो, परन्तु अवैष्णव गुरु नहीं हो सकता, षट शास्त्री, वेद वेदान्त विशारद परन्तु अवैष्णव ब्राह्मण गुरु नहीं हो सकता तथा वैष्णव श्वपच भी गुरु हो सकता है। अर्थात् जो कोई प्रभु का प्यारा सच्चा भक्त हो वही गुरु हो सकता है। वैष्णवों में अवैष्णवों द्वारा दीक्षित मनुष्यों को श्रीवैष्णवी दीक्षा सम्पन्न नहीं माना जाता है। अतः श्रीवैष्णव द्विजों से ही मन्त्र लेना विज्ञों का कर्तव्य है।

अवैष्णवाद्गृहीत्वाथ हरि भक्तिर्न वर्धते ।
अवैष्णवाद्धृतं मन्त्रं यः पठेद्वैष्णवो द्विजः ।
कल्पकोटि सहस्त्राणि पच्यते नरकाग्निना ॥

नारद पञ्चरात्र ।

अवैष्णव ब्राह्मण से प्राप्त मन्त्र प्रभु भक्ति विकशित नहीं कर सकता है, उससे हरि भक्ति संकुचित ही रहती है अतः वैष्णव द्वारा ही मन्त्र ग्रहण करना उचित है। अवैष्णव से प्राप्त मन्त्र जो मनुष्य जपता है वह करोड़ों हजार कल्पों तक नरक की धधकती अग्नि से सन्तप्त रहता है ।

विष्णु मन्त्रं न गृह्णीयाद्विष्णु भक्तिविहीनतः ।
न शैवान्न च शाक्ताच्च गृहणीयाद्वैष्णवाद्विजात् ॥
यस्मिन्देहे लभेन्मन्त्रं वैष्णवो वैष्णवादपि ।
पूर्व कर्माश्रितं देहं त्यक्त्वा स पार्षदो भवेत् ॥

शैवों से, शाक्तों से प्रभु भक्ति विहीनों से, कभी वैष्णव मन्त्र ग्रहण न करें। शुद्ध भगवत्प्रपन्न श्रीवैष्णव द्वारा ही वैष्णव दीक्षा लेनी समुचित है। जिस देहमें मनुष्य वैष्णव द्वारा भगवन्मन्त्र प्राप्त करता है उस देह

के पूर्व सञ्चित तथा अन्य समस्त पाप विनाश हो जाते हैं और वह भाग्यशाली भक्त शीघ्रही भगवान् का दिव्य पार्षद हो जाता है ।

इस प्रकार प्रत्येक मोक्ष कामुक मनुष्यों को शुद्ध प्रिय भगवद्भक्त श्रीवैष्णव गुरु द्वारा ही पञ्च संस्कार प्राप्त करनें चाहिये । मन्त्र प्रदाता तथा वैष्णवों के संस्कार प्रदाता उपरोक्त गुण सम्पन्न सद्गुरु ही हो सकते हैं अन्य कोई नही । मुमुक्षु मनुष्य को उपरोक्त गुण सम्पन्न सद्गुरु आचार्य ढूंढ लेना चाहिये क्योंकि "गुरु करे जान के पानी पियें छान के" वह मनुष्य पीछे से पश्चा-त्ताप नहीं करता है । इसी लिये पञ्च संस्कार प्रदाता के लक्षण दर्शाये गये हैं ।

प्रभु प्रिय पञ्च संस्कार

पञ्च संस्कारों से सम्पन्न मनुष्य प्रभुको अत्यन्त प्रियतम हैं, पञ्चसंस्कार मोक्षमार्गके परम सहायक साथी हैं, इनको प्राप्त करके मनुष्य बहुत शीघ्र प्रभु धामको तथा प्रियतम प्रभुके परम ललित कमनीयवपुके दर्शनका लाभ कर सकता है। श्रीमुखवचन भी है —

प्रसंगादत्र वक्ष्यामि पञ्च संस्कार संज्ञिनाम् ।
दीक्षांमत्प्रीति जननीं पूजा योग्योययाद्विजः ॥

तापः पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चम ।
पञ्च संस्कार दीक्षा देव देव प्रियावहा ॥

—बिष्णुतिलक संहिता ।

प्रसंगतः यहां पर पञ्चसंस्कार सम्पन्ना श्री-बैष्णवी दीक्षाका बर्णन करताहूं। जो दीक्षा मेरी प्रीतिकी योग्यता प्राप्त कराती है। दिव्यभगवदायुधों से बाहु मूलों को सन्तप्त करना, ललाटमे दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना, भगवत् सम्बन्धी नाम रखना, भगवन्मन्त्र प्राप्त करना, तथा भगवत् पूजन करना यही पञ्चसंस्कार सम्पन्न बैष्णवी दीक्षाहै सर्बदेब शिरोमणी जो मैं मेरी परमप्रियहै । पुनः

तापं पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो माला तथैव च ।
अमीहि पञ्च संस्कारा पारमैकान्त्य हेतवः ॥

तप्तमुद्रा धारण ,ऊर्ध्वपुण्ड्र, भगवत्सम्बन्धि नाम श्रीराममन्त्रराज प्राप्ति , तुलसीमाला धारण , ये पञ्च संस्कार परम एकान्तिक मोक्षसुखके साक्षात्प्रदाताहै।

बैष्णवों में तुलसी माला धारण करना अत्यन्त आव-

श्यक कर्तव्य माना जाता है। पूजा, पाठ, प्रभुस्मरणके समयमें इसकी विशेष आवश्यकता मानी गई है अतः जिस जगह "यागश्च पञ्चमः" है वहां पर भी पूजाकालमें मालाकी अत्यन्त आवश्यकता होनेके कारण 'तुलसी माला ग्रहण करना परिशेषात् सिद्ध होता है और जिस-जगह "मन्त्रमाला तथैव च" यही पाठ है वहां तो साफही माला ग्रहण करना बिहित होताहै।

हारीत स्मृति का भी बचनहै कि —

तस्मात् तापादि संस्काराः कर्तव्या धर्मकांक्षिणा।
अयमेव परो धर्मः प्रधानः सर्व कर्मणाम् ॥

इसलिये तापादिक पञ्च संस्कारों से प्रत्येक धर्म कांक्षी मनुष्यों को संस्कृत होना चाहिये। समस्त शुभ कर्मों में यही एक शुभ कर्म है और समस्त धर्मों में यही एक परम श्रेष्ठ कल्याणकारक धर्म है।

पुण्ड्रं नाम क्रिया चैव मन्त्रश्चैवार्चनं हरेः।
संस्काराः पञ्च कर्तव्या ब्राह्मणस्य बिधानतः ॥

परासरस्मृति उत्तर खण्ड।

"ऊर्ध्व पुण्ड्र, प्रभु प्रियनाम, तापादिक क्रिया, मन्त्र, तथा तुलसी माला पुरस्सर भगवत्पूजन ये पांच संस्कार प्रत्येक ब्राह्मणको सम्यक् प्रकारेण विधि पूर्वक प्राप्त करने चाहिये।

बृहद्ब्रह्म संहितामें भी—

विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकाम एव च।
तापादिना बिमुक्तः यात्पातकै कोटि जन्मजैः॥

"बिरक्तहो अथवा गृहस्थ, सकाम हो या निष्काम परन्तु सबको तापादिक संस्कार सम्पन्न होना आवश्यक है, इससे करोड़ों जन्मार्जित पापोंसे मनुष्य शीघ्र बिमुक्त होजाताहै। इसमें कुछभी संशय नहीहै। पुनः—

अथ शिष्यस्य वै कुर्यात् संस्कारान् पंच च क्रमात्।

—ईश्वर संहिता

इसके बाद शिष्यको क्रमशः पञ्चसंस्कारों से संस्कृत करना चाहिये- पुनः—

तस्मात्तापादि संस्कारास्सर्वमन्त्रेषु सत्तमाः।
अध्यापयेत्ततः पश्चादन्यथा नरकं ब्रजेत्॥

विज्ञ आचार्यका कर्तव्य है कि शिष्यको प्रथम इन-संस्कार सम्पन्न बना देवें पश्चात् मन्त्रोंका उपदेश देवे अन्यथा दाता गृहीता दोनों नरकगामी होते हैं। नारद पञ्चरात्रान्तर्गत बाल्मीकि संहितामें भी—

पञ्चसंस्कार सयुक्तो दासान्तं नाम चावहन्।
बिष्णु भक्तिः समायुक्तो बिरक्तो वैष्णव स्मृतः।

'पञ्चसंस्कार सम्पन्न, तथा दासान्त नामबाला भगवद्भक्ति सम्पन्न बिरक्त मनुष्य श्रीबैष्णवहै ॥

पाराशर उत्तर खण्ड दशमाध्यायमें—

अर्थ पञ्चक तत्वज्ञाः पञ्चस ंस्कार स ंस्कृताः।
अकार त्रय सम्पन्ना महा भागवता स्मृताः॥

'अर्थ पञ्चकके तत्वोंको यथार्थतया समझने बाले, पञ्चसंस्कारोंसे सुसंस्कृत, अनन्यार्हत्व, अनन्यशेषत्व तथा अनन्य भोग्यत्व इन त्रय अकार सम्पन्न प्रभुप्रिय श्रीवैष्ण महा भागवत कहलाते हैं। पुनः—

पञ्च संस्कार पूर्वं तु मन्त्रमध्यापयेद्गुरुः।
संस्काराः पंच कर्तव्या पारमैकान्त्यहेतवः ॥

महाशंभु संहितामें भी—

तुलस्यामाल तिलकं धनुर्वाणाङ्कितौ भुजौ।
राममन्त्राभि नामाद्यः संस्काराः रामसेवके ॥

श्रीरामभक्तके लिये तुलसीमाला, तिलक, धनु-बाण धारण, श्रीराममन्त्र, श्रीराम सम्बन्धि नाम ये पांच संस्कार परम आवश्यक हैं। प्रधान धर्म है।

श्रीमहा रामायणमें भी—

भाले च रम्य तिलकं विवरे च दीप्तं,
रामांघ्रि चिन्ह सहितं श्रीचूर्ण मध्ये।
कण्ठे तथा तुलसीदाम लसद्भुजौ वै,
तप्तेन बाण धनुषाङ्कित रामभक्तः ॥
रामस्य चैव हृदये शुचि राजमन्त्रः,
श्रीरामनाम सहितो निज नाम युक्तः।
सत्संग नित्य निरतः श्रुति तत्व वेत्ता,
ज्ञानी महान् रघुपते समुपासकः सः ॥

जिसके ललाट में परमरमणीय सुन्दर उर्ध्वपुण्ड् तिलक है जैसे श्रीरामचरण है उस आकृति वाला और मध्यमें श्रीचूर्णसे की हुई श्री परम शोभा देती है, कण्ठ में कण्ठलग्ना श्रीतुलसी की माला कण्ठी है। तप्तधनुर्बाणोंसे जिसके दोनों हाथ अङ्कित हैं वह श्रीरामभक्त है। हृदयमें श्रीरघुनाथजी का परमपावन राजमन्त्र है। श्रीरामनाम सहित जिसका नामहै जो नित्य सज्जनोंके सङ्गमे रहता है, श्रुति और शास्त्रोंका निगूढ़ तत्व जो श्रीप्रभुचरणोंके प्रेममार्गका रहस्य उन गूढ़ तत्वोंका जो ज्ञाता है उसको श्रीरघुनाथजी महाराजके श्रीचरण कमलोंका प्यारा भक्त, सच्चा उपासक समझना चाहिये।

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करमें भी—

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं,
शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रम्।
श्रुति श्रुतं नाम च मन्त्र मालिका,
संस्कार भेदाः परमार्थ हेतवः॥

वेदोक्त मन्त्रानुसार अग्निसे तपाये हुए धनुर्बाणों-से दोनों भुजाओंको अङ्कित करना, ऊर्ध्वपुण्ड् धारण करना श्रीवैष्णवता सूचक नाम ग्रहण करना, श्रीराममन्त्रको हृदयमें धारण करना, तुलसीकी कण्ठी धारण करना ये पांचो संस्कार

मोक्षके कारण भूत परम समर्थ साधन हैं।

एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो
श्रीरामभक्तिं विदधात्वहर्निशम्।
महेन्द्र नीलाश्म रुचेः कृपानिधेः,
श्रीजानकी लक्ष्मण संयुतस्य वै॥

इस प्रकार से: पञ्चसंस्कारों द्वारा संस्कृत होकर महा भागवत बनकर, महा इन्द्रनील मणिके समान श्याम-कान्ति सम्पन्न, कृपानिधि, श्रीजानकी माता और श्रीलक्ष्मणजीके सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अहर्निश भजन करें।

पञ्च संस्कार धारण विधि

श्री सीतारामोपासक श्रीवैष्णवोंको पञ्च संस्कार किस प्रकार लेनें चाहिये उसकी विधि श्रीसनत्कुमार संहिता में छठे अध्याय में श्रीयुधिष्ठिरजी को महर्षि व्यासजीने इस प्रकार बतलाई है

युधिष्ठिर जी पूछते हैं।

धनुर्बाणादि चिन्हानां दीक्षा श्री गुरुणा कृता
कथं भवति लोकेऽस्मिन् वद मे कृपया मु ॥

"हे मुने ! श्रीव्यासजी धनुर्वाणादि चिन्हों द्वारा संस्कृत करके जो श्रीवैष्णवी दीक्षा ली जाती है वह इस लोक में किस विधान से होती है ? कैसे होनी चाहिये ? वह कृपा करके मुझे बतलावें ।श्रीव्यासउवाच—

चैत्र शुक्ल नवम्यां वा कार्तिकी पूर्णिमा दिने ।
सीताजन्म दिने चापि बिवाह दिवसे शुभे ॥
राज्याभिषेक काले वा श्रीराम विजये दिने ।
अन्ये शुभे च काले वा सुदीक्षां धारयेत्सुधीः ॥

चैत्र शुकला नवमी को (श्रीराम-नवमी) अथवा कार्तिकी पूर्णिमा को अथवा श्रीजानकी जन्म जयन्ति (बैशाख शुक्ला नवमी) को अथवा श्रीराम बिवाह के शुभ दिनको (मार्ग शीर्ष अगहन शुक्ला पंचमी) अथवा श्रीराम-राज्याभिषेक दिनको अथवा श्रीराम बिजया दशमीको और भी अनेकों पबित्र दिनों में श्रीवैष्णवी दीक्षा से दीक्षित होवे।

अयोध्यां चित्रकूटे वा बिदेहनगरेऽथवा ।
रामधाम्नि तथा चान्ये यद्वा श्रीराम मन्दिरे ॥

श्रीअयोध्याजी में, श्रीचित्रकूट में, अथवा श्रीमिथिला श्रीजनकपुर में, अथवा पञ्चवटी, किष्किन्धादिक अन्य श्रीराम

तीर्थ स्थलों में अथवा अपने ग्राम के श्रीराम मन्दिर में श्रीसीताराम प्रिय वैष्णवों को दीक्षा ग्रहण करनी चाहियें।

बुधं वैराग्य संयुक्तं काम क्रोध विवर्जितम् ॥
परं तं राघवानन्यं वैष्णवं गुरुदीक्षितम् ॥
वर्णाश्रममनासक्तं निष्पापं वृणीयाद् गुरम्।
शुद्धः शौचादिभिर्भूत्वा गुरुं स्थाप्य शुभासने ॥

परम विद्वान्, ज्ञान, वैराग्य भगवत्प्रेम सम्पन्न, काम क्रोधादिक दुर्गुणों से रहित, श्रीसीतारामजी के अनन्य भक्त श्रीवैष्णव गुरु से दीक्षित वर्णाश्रम धर्म में जिसकी आसक्ति प्रेम न हो, जो सर्वथा निष्पाप हो ऐसे गुणगण गरिष्ट गुरु को वरण करे। शौच स्नानादिक कृत्यों से परिशुद्ध होकर निर्मल प्रेम पूर्वक श्रीगुरु महाराज को सिंहासन पर शुभ आसन पर बैठा कर पूर्ण श्रद्धा से पूजन करे।

ततो गुरु शुभां वेदीं कृत्वा सर्वं विधानतः।
भ्रातृभिः सीतया सार्द्धं रामं संस्थाप्य पार्षदैः ॥
विघ्नेशं रामभक्तश्च सत्कृत्य वेद शासनात्।
मुख्यं तु मारुतिं कृत्वा पुनः सर्वांश्च पूजयेत् ॥
मन्त्रै सर्वोपचारैश्च यजेच्छिष्य सहस्ततः।

उसके बाद श्रीगुरु महाराज विधान पूर्वक परम शुभ वेदी की रचना करें और उस पर समस्त भ्राताओं के सहित श्रीबिदेहराज नन्दिनी श्रीसीताजी के सहित तथा समस्त प्रभु प्रिय नित्य पार्षदों के सहित श्रीरामचन्द्रजी की स्थापना करे। श्रीरामभक्त बिघ्नेश श्रीगणेशजी की वेद के विधान से स्थापना करे। प्रथम मुख्य रूपेण श्रीहनुमानजी की षोडशोपचार पूजा करके बाद समस्त पार्षदों की पूजा करे। बाद में समस्त मन्त्रों द्वारा तथा षोडशोपचारों द्वारा शिष्य के सहित श्रीसीतारामचन्द्रजी महाराज का पूजन करे।

होमं कृत्वाहुतिं दत्त्वा राम मन्त्रैश्च वेदवित्।
मुद्राश्च शरचापस्य शुद्ध धातुमयी तदा॥
बन्हौ तप्त्वाथ शिष्यस्य दद्याद्वै भुजयोर्गुरुः।
चिन्हमेकं तु चापस्य बामे च दक्षिणे तथा॥
शर चिन्हं द्वयं कृत्वा राम नाम युतं वरम्॥

शुद्ध अग्निमें वेदमन्त्रोंसे तथा श्रीराममन्त्रोंसे आहुति देकर शुद्ध धातुसे बनी हुई धनुर्वाण मुद्राओंको उस संस्कृत अग्निसे तप्तकरें, पश्चात् शिष्यकी भुजाओं मे गुरु सबिधि अङ्कित करें, बाम हाथमें धनुषका एक चिन्ह करे तथा दक्षिण भुजामें श्रीसीतारामनामाङ्कित बाणों के दो चिन्ह करे।

ललाटे तिलकं दद्यादूर्ध्वं श्च स्वच्छ मृण्मयम् ।
सिंहासनोपरि श्रेष्ठं द्वि रेखाश्चरणा कृतिम् ॥
स्थापयेज्जानकीरूपां तन्मध्ये श्री हरिद्रजाम् ।

'ललाटमें स्वच्छ श्वेत श्रीचित्रकूटादिक की मृत्तिका द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगावें। सिंहासन पर दो रेखाओं से सम्पन्न श्रीराम चरणाकृति तिलक लगावे, मध्य भागमें श्रीजानकी स्वरूपा हरदी से बनी हुई श्री को धारण करे।

शिष्यं तु राम सम्बन्ध नाम्ना तु प्रवदेत्पुनः ॥
श्री राम तारकं मन्त्रं कर्णे च श्रावयेद्गुरुः ।
तुलसी मालिका सूक्ष्मा कण्ठ लग्ना द्विधा कृती ॥
दद्यात्तां क्षण मात्रोऽपि शिष्यो नैव त्यजेत् पुनः ।

पश्चात् शिष्य को श्रीराम नाम सम्बन्धि नाम कह सुनावे। कान में श्रीरामतारक मन्त्रराजका श्रवण करावे। पुनः सूक्ष्म दानाओं से बनी हुई द्विधाकृति दोलरी, कण्ठलग्ना तुलसीजी की कण्ठी पहिरावें। बाद में उस तुलसी मालिका को शिष्य एक अर्द्ध क्षण मात्रके लिये भी त्याग न करे।

एवं लब्ध्वा च संस्कारान् शिष्यो गुरुं प्रपूजयेत् ॥
वस्त्रै धनैः सुद्रव्यैश्च प्रेम्णा कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥

इस प्रकार से पञ्च संस्कारों प्राप्त कर लेने के पश्चात् शिष्य श्रीगुरु महाराज की प्रदक्षिणा करके वस्त्र धन द्रव्य तथा यथाशक्ति अन्य उपचारों से सम्यक् प्रकारेण पूजन और सप्रेम साष्टाङ्ग प्रणाम करे ।

दण्डवत् प्रणतिं कृत्वा साष्टाङ्गं वचनं वदेत् ।
अहं दासोऽस्मि ते स्वामिन् ! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥

उसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके श्रीगुरु महाराज के चरणों में अनेकों बार सादर सप्रेम बारम्बार प्रार्थना करे और कहे कि हे श्रीआचार्य प्रवर ! मैं आपका अनन्य आश्रित हूं. दास हूं. आप मुझ पर कृपा करें. और सर्वदा प्रसन्न रहें।

तदा नाना विधं श्रेष्टमाशिर्वादं वदेद्गुरु ।
विसर्जनं च देवानां कृत्वा कार्यं समापयेत् ॥

"इसके बाद श्रीगुरु महाराज शिष्य को प्रेम पूर्वक शुद्ध हृदय से आशीर्वाद देवे । तथा पूजन के समय आवाहन करके बुलाये हुये समस्त देवताओं का बिसर्जन करे ।"

शिष्यस्तु भोजनं दद्याद्गुरवे विविधं वरम् ।
सीताराम जनेभ्यश्च दक्षिणा सहितं शुभम् ॥
उच्छिष्टंश्रीगुरोरेव तदा पादोदकं भजेत् ॥

उसके बाद शिष्य उत्तमोत्तम पदार्थ भगवान् को भोग लगाकर श्रीगुरु महाराज को भोजन करवावे तथा अन्य समस्त श्रीसीताराम प्रिय भक्त जनों को सादर भोजन करावे तथा दक्षिणा भी देवे, बाद श्रीगुरु महाराज को प्रसादी आप भोजन करे तथा श्रीगुरु महाराज के चरणोदक का पान करे । इस प्रकार बिधि पूर्बक संस्कार प्राप्त श्रीवैष्णव परम पदके साक्षात् अधिकारी हैं ।

ये पांच संस्कार परम शान्ति प्रदायक हैं । ईश्वरकी असीम अनुकम्पाको जिसके लिये योगिजन निरन्तर प्रयास करते रहते हैं इनके द्वारा सहजमें प्राप्त होती है । मनुष्य यदि छल प्रपञ्चों की प्रकाण्ड ज्वाला से दूर होकर शुद्ध भावसे इनका आश्रय ग्रहण करे तो वह निश्चय ही शीघ्र प्रभु प्रिय हो जाता है । इन पांचों संस्कारों का महत्व शास्त्रोंमें धार्मिक सद्ग्रन्थोंमें बहुत प्रचुरतया प्राप्त होता है । उनमेंसे यत्किञ्चित् दिग्दर्शन मात्र अब दर्शाया जायगा । एक - एक संस्कार को भिन्न - भिन्न करके महात्म्य तथा विधान सह वर्णन किया जायगा ।

धर्म प्रिय महानुभाव उसको देखकर समझ जांयगे कि पञ्चसंस्कार धारण करने के बिषय में वेद, शास्त्र, पुराण, सद्ग्रन्थ तथा सन्त महात्माओं का क्या मत है! और वे किस पूज्यदृष्टि से इनको मानते हैं।

ताप संस्कार

ताप संस्कार पञ्चसंस्कारों मे सर्व प्रथम मानागया है। मनुष्य जिस दिन श्रीवैष्णवी दीक्षा ग्रहण करता है उस दिन से पूर्व इस देह से जो कुछ अशुभ कृत्य वन पड़ें हों उन सबका विनाश करनेके लिये उन्हें भस्मसात् करने के वास्ते प्रथम तप्त भगवदायुधों से मुमुक्षु को सुसंस्कृत हो जाना चाहिये। श्रुति भी इन तप्तायुधों से अङ्कित होने का आदेश देती है ।

धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥

यजुर्वेद अ० २९, मं० ३९ ।

अस्यार्थं=धन्वना, धनुषाङ्किता इतिशेषः। अतस्तीव्राः पटवः परब्रह्मप्राप्ति प्रतिबन्धकीभूत पाप निरसने समर्था वयं समदः कामादिभिरनुष्ठितान् संग्रामान् जयेम' नन्विन्द्रियाणां विषयोन्मुख्ये कथं कामादि जयः इत्याकांक्षयामुच्यते। धन्वना धनुषा तदङ्कन प्रभावेणैव गाः इन्द्रियाणि जयेम इन्द्रिय जयेन च प्रसंख्यानाख्यावस्था लाभे धन्वना आजि अजन्ति गच्छन्ति परब्रह्मगन्तारो अस्मिन्निति आजिमार्गः त जयेम। धनुरङ्कन प्रसन्नेश्वर प्रदर्शितया सुषुम्नया नाड्या बहिर्निष्क्रम्य अर्चिरादि मार्गेण परब्रह्म गच्छेम इत्यर्थः। नन्व निर्लून मायान्वयस्य कथमीश्वर प्राप्ति प्रसक्ति रित्या-शङ्कयाह। धनुः कर्तृ शत्रुभूतमनादि माया सम्बन्धस्य संसार पातनोन्मुख्यं अपकृणोति अपनयति नाशयति यद्वा-तस्य मनोरथाभावं सम्पादयति। ननु सत्सुसञ्चितादि कर्मसु कथं मायासम्बन्धस्य संसार पातनोन्मुख्यं विनाश इत्याह। धन्वना धनुषा सर्वा प्रदिशा सर्वदिग्वर्तिना नाना योनि,जन्म, प्रदान समर्थानि सर्वाणि कर्माणि जयेम नाशयाम इत्यर्थः।

भाषा- हम धनुष बाण से अङ्कित होंगे तो परम समर्थ होकर श्रीराम परब्रह्म की प्राप्ति के प्रतिबन्धक जो पापादिक उन सबका विनाश करने में परम समर्थ हम कामादिकों के किये हुए युद्ध में जीतेंगे। यदि कहो कि इन्द्रियें उन्मत्त बन रही हैं तब कामादिकों का जय कैसे होगा?

तो हम धनुष के अङ्कनके प्रखर प्रताप से उन्हें जीत लेंगे, पुनः इन्द्रिय जय द्वारा जब प्रसंख्यानाख्य अवस्था प्राप्त होगी तब हम प्रभुकी प्राप्ति के लिये उस प्रभुके उदार मार्ग में चलेंगे। धनुषाङ्कित होने से प्रभु प्रसन्नता द्वारा सुषुम्ना नाड़ी द्वारा बाहर निकल कर अर्चिरादि मार्ग से होते हुए परब्रह्म को प्राप्त कर लेंगे। यदि कहो कि माया का आवरण रहते हुए प्रभु प्राप्ति कैसे होगी? तो हम धनुषाङ्कन के ही प्रभाव से माया का निवारण कर देवेंगे। माया के मनोरथों का सर्वथा अभाव कर देंगे। यदि कहो कि सञ्चितादि कर्म रहते मनोरथों का सर्वथा नाश कैसे होगा? तो हम धनुषाङ्कन के प्रभाव से समस्त दिग्विदिशायें जीत लेंगे, हमारे लिये कोई भी प्रकार का बन्धन नहीं रहेगा अर्थात् हम नाना योनि जन्मप्रद कर्मों का आत्यन्तिक विनाश कर डालेंगे क्योंकि हम धनुषाङ्कित हैं।

इस मन्त्रमें यह कहागया है कि इस भगवद्धनुष के धारण करने से मनुष्य वेदाधिकारी बनता है। धर्म मार्ग-पर चलने वाला बनता है, संसार रूप महा समरको वह जीत लेता है। काम क्रोध लोभादिक शत्रु निहत मनोरथ हो जाते हैं। सब दिशाओं मे अर्थात् मोक्षफल प्राप्ति के समस्त साधनों में वह पूरा विजयी होता है।

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्याः दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता। यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥

यजु० २९-४८

या= जो। इषुः =बाण। सुपर्णम् – सुन्दरको। वस्ते-धारण करता है। अस्याः – इस बाणके। दन्तः - फण। मृगः - शत्रुओं को ढूंढ २ कर मारने वाले हैं। या – जो। इषुः – बाण। गोभिः - वेद मन्त्रों से। सन्नद्धा – युक्त होकर। प्रसूता (सती) - अधिक बलवान होकर अथवा भगवत्प्रेरित होकर। पतति - कामादि शत्रुओं को मारने के वास्ते वज्रके समान गिरता है। यत्रा - जिस बाणको धारण करने के लिये अथवा धारण करते ही। नरः - धर्मशील मनुष्य। सन्द्रवन्ति - श्रद्धाके साथ द्रुत हृदय बन जाते हैं। च - और। विद्रवन्ति - भगवद्भक्ति आदि शुभ प्रवृत्ति में अग्रसर बनते हैं। इषवः - बाणाः। अस्मभ्यम् – हमें। शर्म - कल्याण सुख यंसन् - देवे ॥

इस मन्त्र में भगवद्बाण का वर्णन है। इसके धारण करने से मनुष्य उत्तम संस्कार युक्त होता है। और मोक्षादिक परमानन्द की प्राप्ति सरल हो जाती है।

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽस्मा भवतु न स्तनूः। सोमो अधिब्रवितु नोऽदितिः शर्म यच्छत ॥

यजु० २९-४९

ऋजीते - हे सरल मार्ग में चलाने वाले बाण ! नः - हमें परि बृङ्ग्धि - पापादि कर्मों से तथा काम क्रोधादि शत्रुओं से बचाओ । नः - हमारा । तनू - शरीर । अश्मा- दृढ़ । भवतु - हो । सोमः - सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मीयुक्त भगवान् श्री- राम । नः हमारी । अधिब्रवीतु - प्रसंसा करें । आदितिः अविनाशी श्री राम । नः - हमें । शर्मः - मोक्षरूप परमसुख । यच्छतु - देवें ।

इसका यह तात्पर्य्य है कि बाण पापों से बचाते हैं भगवद्भक्ति योग्य दृढ़ बनाते हैं। हमारी इस भावनासे प्रभु हम पर प्रसन्न होते हैं और अपनी परम सुखकर शरण में लेते हैं।

यो वै नित्यं धनुर्बाणाङ्कितो भवति स पाप्मानं तरति स संसारं तरति स भगवताश्रितो भवति स भगवद्रूपो भवतीत्यथर्वणीया श्रुतिः ॥

जो मनुष्य नित्य धनुर्वाणाङ्कित रहता है वह समस्त पापों से तर जाता है, वह संसार तर जाता है, वह भगवदा- श्रित हो जाता है, वह साक्षात् भगवद्रूप हो जाता है ।

पवित्रं ते विततं ब्रम्हणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ॥ अतप्त तनू तदामोऽश्नुते

श्रुतास इद्धहन्तस्तत्समासत ॥

ऋग्वेद संहिता ७ अष्टक ३ अध्याय ८।

हे ब्रह्मणस्पते ! आप समस्त ब्रह्माण्ड के स्रष्टा तथा ब्रह्मा के स्वामी हैं। आप समस्त जीवों के अन्तःकरणों में अन्तर्यामिरूपेण विराजित हो। सर्व व्यापक आपका परम पवित्र जो दिव्य आयुध वह भी अङ्कन द्वारा सर्वत्र व्यापक है। परन्तु उस आपके आयुध से जिसका शरीर अङ्कित नही है वह अतप्त तनू पाप रहित नहीं हो सकता, जिसके पाप आयुधों के ताप से दग्ध नहीं हुए हैं, वह तत्- ब्रह्म आपको प्राप्त नहीं कर सकता और जो उसको [पूर्वोक्त दिव्यायुधों को] धारण करता है वह विगत पाप्मा आपको शीघ्र प्राप्त हो जाता है।

चमूषच्छ्येनश्शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्सः आयुधानि बिभ्रत्॥ अपामूर्मिं सचमानस्समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥

—सामवेदे उत्तरार्चिके ५ प्रपाठके ३ मन्त्रः।

पृथिव्यादिक भूतों का विकार भूत अत्यन्त दुस्तर संसार सागर में पड़ा हुआ ईश्वरांशजीव भगवान् के दिव्या-

युधों को धारण कर लेने पर इस संसार से अपना उद्धार करने तथा सम्बन्धियों का भी भरण करने लायक (उद्धार करने लायक) परम समर्थ होकर 'तुरीयं धाम, प्रभु के परम धामको प्राप्त कर लेता है, प्रकृति मण्डल का परित्याग कर नित्य सूरियों मे (भगवत्पार्षदोमें) सम्मिलित होकर भगवत्समीप में पहुंच जाता है।

उपरोक्त वेद मन्त्रों से भगवदायुध धारण करने की महिमा का परम पावन माहात्म्य ज्ञात होता है। चारों वेदों की चार श्रुतियां रखीं गई हैं, चारों श्रुतियों मे भगवान् के आयुध धारण करने का विधान बिलकुल स्पष्ट शब्दों में वर्णित है और भी अनेकों वेद मन्त्र हैं जिसमें आयुध धारण की विधि है। परन्तु ये बिलकुल स्पष्ट है।

जिस जगह समस्त हमारे साथी स्नेही मनुष्य भाग दूर रहते हैं उस महान् आपत्ति के समयमें हमें भगवान् के दिव्य "इषवः वाणाः" वाणाहं कल्याण प्रदान करेंगे।
वृद्ध हारीते अ०२ श्लोक २१ —

एवं ताप क्रिया कार्या वैष्णवी कल्मषापहा।
प्रधानं वैष्णवं तेषां ताप संस्कार मुत्तमम्॥
ताप संस्कार मन्त्रेण परां सिद्धि मवाप्नुयात्॥

इस प्रकार सकल कलि कल्मषापहा श्रीवैष्णवी ताप क्रिया करनी चाहिये, समस्त संस्कारों मे ताप संस्कार परम प्रधान है, सर्वोत्तम है, ताप संस्कार मात्रसे ही जीव परम सिद्धि मोक्ष श्री को प्राप्त कर लेता है ।

अथर्वणवेद की श्रुति है —

**एभि वयमुरूक्र मस्य चिन्हैरङ्कित लोके सुभगा-
भवाम । तद्विष्णो परमं पदं गच्छन्ति ह्रि
लां छिता ॥**

भगवान् श्रीरामजी के जिनके परम प्रताप शील विशद अनन्त गुण हैं उनके चिन्हों से अङ्कित होकर हम सव परम शुभग वन जायंगे । जिनसे लाञ्छित होकर मनुष्य श्रीप्रभु के परातपरतम धाम की प्राप्ति कर लेते हैं ।

**अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन च ।
जन्ति त्वन्मयास्त्वां वै भगवन्समुपासते ।**

— भाग० १० स्कं० ४०अ०७ श्लो० ।

हे भगवन्! अन्य जो श्रीवैष्णव आपके परमोपासक हैं वे वेदोक्त विधिपूर्वक तापादि संस्कारों से संस्कृतात्मा

होकर अनन्य भावसे आपके ही श्रीचरणोंमें प्रेम लगा कर आपका भजन करते हैं।

सर्व संस्कार मध्ये तु धनुर्बाणो महावरः ॥
स्वामिन्नादौ त्वया प्रोक्तः कथमित्यभिधीयते ।

श्रीमहारामायणे — पार्वति वाक्य—

हे स्वामीन्! समस्त संस्कारों के मध्यमें आपने धनुर्बाण को परम श्रेष्ठ बतलाया है इसका क्या कारण है? कृपा करके मुझे बतलावें । श्रीशंकर उवाच ।

नित्यं प्रियः प्रियतरो रघुनन्दनस्य,
बाणो धनुर्विमल मन्त्र षडक्षरश्च ।
बाले तदेव सकलेषु च चिन्ह मध्ये,
श्रेष्ठं महाधनुशरं समुपासकेषु ॥

परमश्रेष्ठ धनुर्बाण तथा परम विमल श्रीषडक्षर राम राज मन्त्रये दोनों श्रीरामजी को परम प्रिय हैं। अतः हे बाले! श्रीराम भक्तों के वास्ते समस्त संस्कारों के मध्य में धनु-र्बाण चिन्ह धारण करना महान् श्रेष्ठतम प्रधान करणीय कर्तव्य है ।

ध्याने जपे विविध पाठ रतेषु नित्यम्
पूजा रताः षडधिकैर्दशभिः प्रकारैः ।
एतद्धनुः शर विवर्जितकास्तु कुर्युः,
रामः प्रसीदति कदापि न चैव तेषाम् ॥

ध्यानमग्न जप परायण, वेदाध्ययन तत्पर, षोडश प्रकार से पूजा करने वाले, तथा अन्य पवित्र कार्यकर्ता मनुष्य यदि श्रीरघुनाथजीके परम दिव्य धनुवण चिन्हों से विवर्जित हैं ताप संस्कार से असंस्कृत हैं. उनपर श्रीरामजी कदापि प्रसन्न नहीं होते हैं, अतः धनुबाण धारण करना चाहिये ।

यज्ञं च तीर्थ गमनं पितृ देव सेवम्,
कुर्वन्ति कर्म शुभकं श्रुतयो वदन्ति ।
येनाङ्किता धनु शरैर्विफलं च सर्वम्,
ये चाङ्किता धनु शरैश्च फलं सहस्रम् ॥

यज्ञ, तीर्थाटन, पितृतर्पण, तथा अन्य समस्त शुभ कर्म जो श्रुतियां वर्णन करतीं हैं वे सब यदि बिना धनुषाङ्कित होकर करता है तो वे सब निष्फल हो जाते हैं परन्तु वे ही

शुभ कर्म। यदि धनुषाङ्कित होकर करता है तो वह हजारों गुण अधिक फल प्राप्त करता है।"

चक्रात्फलं शतगुणं धनुषः शरस्य,
यश्चांकितोऽपि स च रामजनाग्रगण्यः।
सारूप्यमेव लभते किल तत्क्षणे वै,
रामः प्रियः प्रियतरोऽनुदिनं च मह्यम् ॥

"हे प्रिये! चक्राद्यायुध धारण करनेकी अपेक्षा धनुर्बाण धारण करने से सौ गुण अधिक फल प्राप्त होता है, जो धनुर्वाण से अङ्कित होता है वह श्रीराम भक्तों में परम श्रेष्ट है वह श्रीरामजी का तथा मेरा परम प्रियहै; उस पर प्रतिदिन भगवान् की प्रीति बढ़तीही जाती है, वह जिस समय धनुर्वाणाङ्कित होता है उसी क्षणमें सारूप्य मुक्ति को निःसंशय प्राप्त कर लेता है।"

ततस्तं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्ग प्रभावनम्।
राम बाणासनाक्षिप्तमावहत्परमां, गतिम् ॥
बा० रा० किष्कि० सर्ग १७।

"श्रीरामचन्द्रजी के धनुष से छूटे हुए उस बाण ने, उस वीर बालि को परमगति (साकेत लोक) प्राप्त कराया।

वह बाण स्वर्गमार्ग (अर्चिरादि मार्ग) का प्रकाशक है श्रीराम-नामाङ्कित है तथा मनुष्यों को परमगति मोक्ष प्रदायक है।

योनरो मम भक्तस्तु दिव्यायुधानि धारयेत्।
श्वपाको बाथ गोघ्नो वा मम लोकमवाप्नुयात्॥
ब्रह्माण्डपुराणे।

जो मनुष्य मेरा भक्त है और मेरे दिव्यायुधों को धारण करता है वह श्वपच हो अथवा गोहन्ता भी हो परन्तु वह समस्त पापों से निर्मुक्त होकर मेरे परम धामको निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।,

बिरक्तो वा गृहस्थो वा सकामो काम एव च।
तापादिना विमुक्तस्यात्पातकैः कोटि जन्मजैः॥
बृहद् ब्रह्म संहिता।

श्रीअगस्त्य संहिता में भी—

रामायुधाङ्कितं दृष्ट्वा शिरसा प्रणमेत् यः।
षष्टि बर्ष सहस्त्राणि ब्रम्हलोके महीयते॥
या गतिं योग युक्तानां मुनीनां वीत रागिणाम्।
धनुर्बाणाङ्कितेनैव सा गतिं लभते पराम्॥

श्रीरामायुधों से समङ्कित भाग्यवान् मनुष्य को जो कोई मस्तक झुका कर प्रेम सहित प्रणाम करता है, वह ६० हजार वर्ष पर्यन्त ब्रह्मलोक के अपार आनन्द का उपभोग करता है। बड़े २ योगी मुनी तथा बैरागी जिस उच्चतम गति को प्राप्त नहीं कर सकते हैं उसी परमोत्तमा गति को धनुर्बाणाङ्कित पुरुष तत्काल ही प्राप्त करता है।

॥

बाहुमूले धनुर्बाणेनाङ्कितो रामकिंकरः।
शीतलेनाथ तप्तेन तस्य मुक्तिर्न संशयः॥
चक्राच्छत गुणं पुण्यं प्रोक्तं बाणादि धारणे।
सर्वेषां राम भक्तानां राम मुद्राभि धारणम्॥

'जिस राम भक्त के बाहुमूल में धनुर्वाणादि चिन्ह अङ्कित है, शीतल या तप्त किसी प्रकार भी धनुर्वाणादि न्हसे शोभित हैं तो वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है इसमें कोई भी प्रकार का संशय नहीं है. शङ्खचक्राद्यायुध धारण से धनुर्बाण धारण का शत गुण विशेष माहत्म्य हैं अतः श्रीराम भक्तों को अवश्य ही श्रीरामायुधों से समङ्कित होना ही चाहिये। सदाशिव संहिता में भी —

रामायुधाभ्यां तप्ताभ्यां सीतायाः मुद्रया सह।

अङ्किता ये महाभागाः नित्यमुक्ताश्च मुक्तिदा॥
मुनेऽस्मिन्भारते वर्षे चाप बाणांकिता नराः।
स्वपरं कुल साहस्रं तारयन्ति सुखेन वै॥

"तप्त श्रीरामायुधों से तथा शीतल श्रीरामायुधों से जो महाभाग अङ्कित हैं वेश्री वैष्णव नित्य मुक्त हैं तथा दूसरों को मोक्ष प्रदाता हैं। हे मुने! इस परम श्रेष्ठ भारतवर्षमें जो धनुर्बाणाङ्कित श्रीराम भक्त हैं वे अपने तथा दूसरे सत्सङ्गियो के कुलों को हजारों पीढ़ी पर्यन्त पुरुषाओं को सुख पूर्वक उद्धार कर देते हैं।"

या गतिर्योग युक्तानां नैष्ठिकानांच न्यासिनाम्।
दुर्लभां तां गति चैव प्राप्नोति धनुषांकितः॥
धनुषांकित बाहुभ्यामर्चनं देव पितॄणाम्।
तस्मात्ते पितृ देवाश्च गच्छन्ति परमं पदम्॥

योगनिष्ठ, यम, नियम, ध्यान, धारणा, परायणो को, नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को, सन्यासियों को, बड़े कष्ट सहन करने के बाद जिस उत्तमा गति की प्राप्ति होती है उस गति को धनुर्बाण धारण करने वाला [तप्त धनुर्बाणों के चिन्हों से

विन्हित) श्रीराम-भक्त सहज में प्राप्त कर लेता है। दोनों भुज मूलों में धनुर्बाणाङ्कित होकर जो मनुष्य देव, पितृ तर्पणादिक शुभ कार्य करता है तो उसके अर्चन तर्पणादिक को प्राप्त करके देवगण, तथा पितृगण परम प्रसन्न होते हैं और परम पद का जाते हैं।

धनुः शरांकितो मर्त्यो यद्यत्कुर्याच्छुभं मुने।
तत्तच्छत गुणं याति विपरीतेन तु निष्फलम्॥
येषु श्राद्धेषु होमेषु होतारो धनुषांकिताः।
तस्य ते पितृ देवाश्च सुधां प्राश्नन्ति सर्वदा॥

हे मुने! धनुर्बाणाङ्कित मनुष्य प्रति दिन जो जो शुभ कृत्य करते हैं वे सब शतगुण फल प्रदाता हो जाते हैं और विपरीत होने पर अर्थात् बिना धनुर्बाण मुद्रा धारण किये जो कुछ करते हैं वे सब निष्फल हो जाते हैं। जिनके श्राद्धमें होममें, होता धनुषाङ्कित होता है उसके पितृगण तथा देवगण नित्य अमृत का मधुरास्वादन करते हैं।

येषु श्राद्धेषु होमेषु न कोऽपि धनुषांकितः।
तस्य पिण्डाहुतिर्याति निष्फलत्वं न संशयः॥

जिसके श्राद्ध में तथा यज्ञादिक अन्य बिधानों में धनुषाङ्कित मनुष्य कार्यकर्त्ता नहीं होता है तो उनका पिण्ड दान तथा उनका आहुति प्रदान सब व्यर्थ हो जाता है ।।इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ब्रह्म पुराणे कोशल खण्डे —

धनुर्वाणादि चिन्हानां धारणं तिलकान्वितं ।
तुलसीकाष्ठ मालाढ्यं तं जानीत सु बैष्णवम् ॥

ललाट में सुन्दर उर्ध्व पुण्ड्र तिलक है । बाहु में धनुर्बाण मुद्रा अङ्कित है । गले में तुलसी काष्ट माला सुशोभित है, उन मनुष्य को परम शुद्ध श्रीबैष्णव जानो, समझो, सदाचार संग्रहे पाद्म बचनम् --

आद्यस्तु बैष्णवः प्रोक्तः धनुर्वाणांकितो हरेः ।
तुलसीचोर्ध्व पुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः ॥

तुलसी माला धारक, उर्ध्वपुण्ड्र धारणकर्ता, मन्त्रराज के रहस्यों से परिज्ञात, धनुबाणाङ्कित मनुष्य श्रीबैष्णव कहा जाता है ।

परमेश्वर संहिता में भी —

प्रदीप्तानल संतप्तैः स मे मन्त्राधिवासितैः।
पूजितैरर्घ्यं गन्धाद्यैरंकितव्या क्षणेन हि ॥

वेदोक्त मन्त्रों से सुसंस्कृत प्रज्वलित अग्नि से सन्तप्त अर्घ्य, पाद्यादिक, गन्ध पुष्पादिक उपचार से सम्मानित मेरे दिव्य आयुधों से मुमुक्षु शिष्यों को अङ्कित करने चाहिये। कितने लोगों का कहना है कि गृहस्थ को तप्तायुध धारण न करना चाहिये, परन्तु यह बात शास्त्रानुकूल नहीं है, शास्त्रों से तो गृहस्थ; विरक्त, सबको इन आयुधों को धारण करने का अधिकार प्राप्त है "वेद तो कहता है 'पशु पुत्रादिकान् सर्वान्' पशु, पुत्र, गृह सबको भगवदायुधों से अङ्कित करने चाहिये। पुनः 'विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकाम मेव वा' इस बृहद्ब्रह्म संहिता के बचन से तथा शाण्डिल्य स्मृति के —

स्त्रिया सहैव कर्तव्यं गृहस्थस्य विधानतः।
संस्कार पञ्चकं तेन भवेत्सा धर्मचारिणी ॥
तापादि पञ्च संस्कारा गृहस्थस्य यथाविधिः।
आचार्य्येण सदाकार्य्याः स्वगृह्योक्त विधानतः ॥

स्त्री सहित ही गृहस्थ को पञ्च संस्कार प्रदान करने चाहिये, सह धर्मिणी का अर्थ ही यही है कि समान ही हो धर्म जिसका वह अतः वैष्णव की धर्म पत्नी को भी वैष्णवी संस्कार प्राप्त करना परमावश्यक है। उत्तम आचार्य का कर्त्तव्य है कि गृहस्थ को विधान पूर्वक तापादिक पञ्च संस्कार प्रदान करे "इस वचन से; तथा "सर्वाश्रमेषुवसतां स्त्रीणां च द्विज सत्तमाः" इस पाराशर स्मृति के वाक्य से गृहस्थ को भी सप्तायुधों से अंकित होना चाहिये यह सिद्ध होता है आगे विवेचन हो चुका है कि यह परमोदार मार्ग है इसमें सर्वाधिकार है। हां, श्रद्धा तथा भगवत्प्रेम की जरूरत है।

रामनवरत्न में भी —

रामायुधौ सुतप्तौ च जानकी मुद्रिका विना।
पारमेष्ट्यं न प्राप्नोति ज्ञानादि साधनै रपि॥
रामायुधांकितश्चैव तनुं त्यजति यो पुमान्।
याम्याश्च पार्षदास्तत्र नमन्ति शिरसा हितम्॥

श्रीरघुनाथजी महाराज के मोक्ष प्रदायक आयुधों से तथा श्रीकिशोरीजी (श्रीजनकात्मजाजी की) मुद्रिका के चिन्ह

धारण किये बिना मनुष्य मोक्ष धामको प्राप्त नहीं कर सकता है, भले न वह ज्ञान वैरागादिक साधन सम्पन्न भी हो तो भी इसके बिना मोक्ष प्राप्त करने की आशा करना दुराशा मात्र है। श्रीरामायुधों से अंकित मनुष्य जिस जगह पर प्राणोत्सर्जन करता है उस पावन पृथिवीको यमके दूत मस्तक झुका कर सादर प्रणाम करते हैं तथा उस भक्तको भी वन्दन करते हैं।

युग्म मन्त्र जपेन्नित्यं धनुर्बाणौ च धारयेत्।
स जानकी बल्लभः स्यात् सामीप्यं सुखमृच्छति॥

श्रीसीतारामजी महाराज के युगल मन्त्रका जो नित्य सादर जप करता है तथा धनुर्बाण धारण करता है वह श्रीजानकीबल्लभलालजू (श्रीरामजी) का परम प्रिय हो जाता है तथा सामीप्य मुक्ति प्राप्त कर प्रभु सेवा के आनन्द का अनुभव करता है। पुनः सच्छास्त्रों का दृढ सिद्धान्त है कि—

लोकेऽस्मिन् भौतिका देहा जनानां मल मूत्रजाः।
तप्त मुद्रांकिताः शुद्धास्ते भवन्ति हि तत्क्षणात्॥

अथवा भस्मतां याति लोक वेदस्य बासना।
तप्ताभ्यां शर चापाभ्यां भवेन्मन्त्रस्य योग्यता ॥

मल, मूत्रोद्भव मनुष्यों के जो अपवित्र शरीर हैं वे तप्त मुद्रा धारण मात्रसे ही तत्काल पवित्रतम बन जाते हैं। अथवा तप्त धनुर्वाण धारण करने से भक्तों के हृदय की लौकिक तथा वैदिक सूक्ष्मतम बासनाएं जो भगवत्प्राप्ति की पूर्ण विरोधिका हैं उनका समूल बिनाश हो जाता है तथा श्रीराम-मन्त्रराजकी प्राप्ति का सुखकर अधिकार प्राप्त होता है। मनुष्य श्रीबैष्णव धर्मके मर्मों को समझने की योग्यता प्राप्त करता है।

यद्वायमेन कालेन त्वग्राह्यो भवति क्षणात्।
तप्ताभ्यां शरचापाभ्यां मांकितो रामबल्लभः॥
यद्वा पित्र्यर्षि देबानाँ ऋण दग्धं करोत सः।
तप्ताभ्यां शर चापाभ्यांमांकितो यो भवेज्जनः॥

अथवा तो जिस तरह राजा किसी चीज पर मोहर लगवा दे ताकि उसको अन्य कोई मनुष्य ले नही। उसी तरह

जिस मनुष्यके शरीर पर श्रीराम राज्यकी धनुषबाण मुद्रा की मोहर खतप्त करके गुरुमहाराज लगा देते हैं उसका वह धनुर्बाणाङ्कित देह प्रभु का हो जाता है व श्रीरामब-ल्लभ हो जाता है। उसको अन्य यम, काल, पाप, कर्म-बन्धनादिक छू भी नहीं सकते हैं। अथवा अपार तूल (कपास-रुई) की राशिमें जैसे आगकी लपट छुआ देने मात्रसे ही थोड़ी देरमें वह जलकर भस्म हो जाती है वैसे ही देव, पितृ, मानवादिक जो ऋण तथा अनेकों पाप रूपी जो रुईका पहाड़ है उसको तप्त धनुर्बाण जलाकर भस्म कर देता है अर्थात् तप्त धनुर्बाणाङ्कित मनुष्य देव पितृ ऋण तथा समस्त दुष्कर्म पापादिकों से तत्काल विमुक्त हो जाता है वह भगवत्प्रिय बन जाता है ॥

यद्वा कामादिकाः सर्वे शत्रवः दुःखदायकाः।
तप्ताभ्यां शरचापाभ्यां सन्त्रस्तानाशमाप्नुयात्॥
हनुमान्वायु रूपेण मर्त्यलोके चरन्सदा।
धनुर्बाणाङ्कितं दृष्ट्वा रक्षति सर्व सङ्कटात्॥

"अथवा जिस तरह से ग्रीष्म के ताप से सन्तप्त छोटे-छोटे अनेकों जीव प्रतिदिन नाश को प्राप्त होते हैं उसी तरह तप्त धनुर्बाण के ताप से दुःख दायक काम क्रोधा-दिक आत्म शत्रु सन्तप्त होकर शीघ्र ही नाशको प्राप्त होते हैं वायुरूपेण इस मर्त्यभूमि में सर्वदा प्राणियों के हितार्थ

वास्ते विचरने वाले पवनात्मज श्रीहनुमानजी महाराज धनुर्बाणाङ्कित मनुष्य की समस्त सङ्कटों से तथा आपद् विपदाओं से सर्व प्रकारसे रक्षा करते हैं।

कामध्वज भक्त की कथा परम प्रसिद्ध ही है, भक्त माल के महान् प्रसिद्ध लेखक नाभाजी ने इनके चरित्र का बहुत अच्छी तरह वर्णन लिखा है । उनका लेख है कि—

" कामध्वजके कपि चारु चितापर काष्ठजू ल्याये "

कामध्वजजी एक अच्छे राजपुत कुलके थे, उनके घराने का अच्छा मान्य था, महाराजा चित्तौड़गढ़ के दरबार में इनके अन्य भ्राता हमेशाँ जाया आया करते थे, दरबारमें उन लोगों की अच्छी इज्जत थी,

कामध्वजजी का स्वभाव परम शान्त मृदुल तथा दयालु था, दरबारमें जानेसे राजसी प्रकृति का विकास होगा, तथा चित्तकी चञ्चलता अत्यधिक परिमाणमें बढ़ेगी इस विचार से आपने राज्य दरबार में जाना छोड़ दिया था,

इनके भाइयों को इनका आचरण खटकता था वे लोग इन्हे बारम्बार समझाया करते थे कि " तू राजाके पास आता जाता नहीं है तेरी नौकरी छूट जायगी, फिर तू क्या खायगा पियेगा ? हम लोग तेरे हितके वास्ते कहते हैं तू महाराजा के पास जाया आया कर, कमसे कम दिन में एक बार तो हाजरी में आया कर "

भ्राताओं के ये वचन इन्हें अच्छे न लगते और उसका प्रतिवाद न करके प्रभु भजन में मस्त रहते, एकबार इनके भाइयों ने बहुत ज़ोर से डांट डपट कर समझाया तब कामध्वजजी ने साफ-साफ कह दिया कि—

"जनगाहक हैं करुणाकर हैं हम चाकर हैं रघुनन्दन के॥

मैं रघुनाथजी का सच्चा सेवक हूं, वही मेरे मालिक हैं, उनको छोड़ कर इस दुनिया में किसी को मालिक नहीं समझता, यह वाक्य सुन कर वे लोग बोले कि जब तुम महाराज के दरबार की नौकरी न करोगे तो हम सब तो तुम्हारा साथ न देंगे, न तुम्हें खाने पीने देंगे, और न तुम्हारी परवाह रखेंगे। भला, यह तो बता कि जब हम लोग छोड़ देंगे तब यदि तेरा शरीर निवृत्त हुआ तो उसका अग्निदाह कौन करेगा? है और कोई तेरा!

भाइयों को नम्र भाव से हाथ जोड़ कर श्रीकामध्वजजी बोले कि प्रिय भाइयो! जो परमात्मा विश्वभर की रक्षा करता है जिसका विश्वम्भर ऐसा उदार नाम है वही दीनानाथ मेरा भी भरण पोषण करेगा' मुझे उन्हींके चरणों का एक मात्र आश्रय है। और मेरे मरण समय के दुःखद काल में भी वही भक्त वत्सल मेरी सहाय करेगा, मुझे कोई चिन्ता फिकर नहीं है, मैं तो अब आप सबसे अपने अपराधों की माफी मांगता हुआ उसीके भजन के लिये जङ्गल का रास्ता लेताहूं।

यों कहकर भक्त कामध्वज श्री सद्गुरु द्वारा पञ्चसंस्कार सम्पन्न होकर जंगल के एकान्तस्थल में निवास करके प्रभु भजन करने लगे।

जब उनके मरण का समय उपस्थित हुआ तब उन्हें प्रथम ही से ज्ञात हो गया और अनन्य भावेन प्रभुस्मरणमें लग गये।

काल चक्र किसी को छोड़ता नहीं है, जन्मा उसका मरण एक दिन निश्चित ही है, भक्त कामध्वज ने सहर्ष मृत्यु का स्वागत किया, और प्रभु के दिव्य पार्षदों के साथ विमान में बैठ कर श्री सीताराम जी महाराज के नित्य निकेतन श्री साकेत धाम के नित्य निवासी बन कर कृत कृत्य हो गये।

इनका देह जंगल में पड़ा रह गया, कोई कुटुम्बी तो था ही नही जो अग्नि संस्कार करे, अन्य कोई भी मनुष्य वहां पर नहीं था जो कि उनकी अन्तिम क्रिया सम्पादन करे।

भक्त वत्सल भगवान् ने सोचा कि ये भक्त मेरा अनन्य प्रेमी है, इसके देहकी अन्तिम क्रिया करने वाला सिवा मेरे और कोई भी संसार में नहीं है, यदि इसकी देह गीदड़ों द्वारा नोंची गई तो मेरी लाज जाती है, अतः इसका प्रबन्ध करना भी मेराही कर्तव्य है, यों विचार कर भक्तवत्सल भगवान् ने अपने प्यारे भक्त प्रिय पार्षद श्रीहनुमान

जी को आदेश दिया की "तुम मेरे अन्य पार्षदों को साथ लेकर जाओ और भक्त कामध्वज के देहकी अन्तिम क्रिया यथा विधि करो" भगवान् का दिव्य आदेश प्राप्त कर हनुमानजी नित्य पार्षदों के साथ वहीं आये तथा श्रीतुलसी चन्दनादिक पवित्र काष्ठों द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके भक्तकेदेह की अन्त्येष्टि क्रिया की,

"धन्य है भगवान् की और भगवत् पार्षदों की इस अपार कृपा की"

धनुर्बाणाङ्कित मनुष्य की सर्व संकट से रक्षा करने वाले श्रीहनुमानजी ने अनेकों स्थलों पर सम्यक् प्रकारसे रक्षा की है। बहुत से संग्रहीत पुस्तकों में यह भी गायाजाता है कि श्रीहनुमानजी ने अपनी सैन्या के प्रत्येक वानरों को भगवदायुधों से अङ्कित किया था। यथा सदा शिव संहिता में —

श्रीगुरोर्मारुतिः शिष्यः सुग्रीवः कपिनां पतिः।
श्रीरामायुध तप्तांश्च राममन्त्रस्य धारणात्॥
पद्माष्टदश संख्याताः स्वसैन्याश्च हनूमता।
दीक्षितास्तेन मन्त्रेण धनुर्बाणेन चाङ्किताः॥

"श्री" जो सीताजी, उनके शिष्य श्रीहनुमानजी के शिष्य कपिराज श्री सुग्रीवजी हुए, श्री हनुमानजी द्वारा तप्तायुध तथा श्रीराम मन्त्रोपदेश प्राप्त करके वह कृतार्थ भये। पुनः

श्रीहनुमानजी ने अपने अठारह पद्म सेनाधिपों को भी श्री राममन्त्र प्रदान करके तथा धनुर्बाणादि पञ्च संस्कारों से दीक्षित किया ।

हनुमतश्च शिष्योऽभूत् महाराजा विभीषणः ।
रामायुधाभ्यां तप्ताभ्यामङ्कितास्च प्रजाजनाः ॥
राजमार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकी कृतम् ।
यद्वतेचान्य मार्गास्तु चौराणां वीथिका यथा ॥

" महाराजा श्री विभीषणजी भी तप्तायुध तथा श्रीराममन्त्र प्राप्त करके श्रीहनुमानजी की शिष्यता को प्राप्त भये, तथा राज्यतिलक के बाद श्रीविभीषणजी ने अपने समस्त प्रजाजनों को धनुर्बाणाङ्कित किया । यह सर्वेश्वर श्रीराम जी से प्रवृत्त तथा श्रीजानकीजी महारानीजी द्वारा प्रचलित मार्ग है, भगवान् को प्राप्त करने के लिये सीधी स्वच्छ और सुखमय सड़क है । इसको छोड़कर अन्य मार्ग चोर लोगों की वीथिकाओं के समान हैं । अन्य भगवदायुधों से धनुर्बाणायुध अत्यन्त श्रेष्ठ है श्रीमद्भागवत में उद्धव के प्रति भगवद् वाक्य है कि " आयुधानामहं धनुः „ समस्त आयुधों में धनुष मेरा ही स्वरूप है इसी लिये धनुर्बाणादि धारण कर्ता मनुष्यको अन्य चक्रादिक आयुधों से अङ्कित होनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं रहती है । और चक्राङ्कित को धनुर्बाणायुधों से अङ्कित होनेकी आवश्यकता

रहती है। सनत्कुमारका संहिता का वाक्य है—

चक्राङ्कित जनानां तु चापमुद्रा अपेक्षिता।
चापबाणांकितानां तु चक्रचिन्हं विवर्जितम्॥

धनुर्बाण भगवदायुधों में सर्व प्रधान है। अतः उनको धारण कर लेने पर अन्य आयुधों से अङ्कित होनेकी आवश्यकता नही रहती है।
अन्यत्र भी शास्त्र वचन मिलतेहैं कि—

चापबाणङ्कितंदृष्ट्वा यदि चक्राङ्कितो नमेत्।
स लभेदतुलं पुण्यं विपरीतात्तु पातकम्॥
चक्रात्कोटिगुणं पुण्यं फलंचापस्य धारणे।
स बाणस्य भुजाभ्यांवै निश्चितं लोकविश्रुतम्॥

धनुर्बाणाङ्कित को देख करके यदि चक्रांकित मनुष्य प्रेम पूर्वक नमस्कार करे तो वह अतुलनीय फल प्राप्त करता है और विपरीत होने पर पापका भागी होता है, चक्रादिक धारण की अपेक्षा धनुर्बाण से अंकित होने का कोटि गुण अधिक महत्व है। यह बात समस्त लोक विश्रुताहै। उपरोक्त शास्त्रीय वचनों से धनुर्बाण मुद्रा धारण करनेका विमल महत्व यथार्थतया विदित होता है।

आज कल्ह कितने महात्मा धनुर्बाण धारण करनेके बाद भी द्वारिका की छाप लेते हैं परन्तु महात्माओं को

॥ तप्तधनुर्बाण धारण विधिः ॥

महा रामायणे—

वक्ष्ये विधि शृणुप्रिये कथयामिसर्वां,
वर्णं धनुश्च वसुधातुमयं प्रकुर्यात् ।
कृत्वा यथोक्त विधिना सकलां प्रतिष्ठां,
संस्थापयेद्धनुमान्सुपूजयेत् ॥

(रामानन्दीय वैष्णवों को) ऐसा नहीं करना चाहिये, जब कि चक्रांकित को धनुर्बाण धारी श्रीवैष्णवका प्रणाम करना तक भी अनुचित माना गया है "विपरीतात्तु पातकम्" यह कहा गया है, तब उस परम समर्थ धनुर्बाण मुद्रा पर चक्रादिक धारण करना कहां तक न्याय संगत है ? इस लिये अपनी इस बहुत दिनों से चली आती भूल को सुधार लेना परमावश्यक है। इस बात पर हरेक राम भक्त वैष्णवों का ध्यान आकर्षित होना चाहिये।

"हे प्रिये ! मैं तुझे धनुर्बाण धारण करनेकी समस्त विधि सुनाता हूं' सावधान होकर श्रवण कर, अष्ट धातुसे बनाई हुई श्रीधनुर्बाण मुद्राओं की सविधि प्रतिष्ठा करनी चाहिये, तथा दीक्षा प्रदान के समय श्रीहनुमानजी का ध्यान करके उन आयुधों की होम पूजा करनी चाहिये तथा श्रीहनुमानजी की पूजा करनी चाहिये ॥

सद्गुरुर्जगति यस्य गुरुर्प्रभावो,
रामस्य चैव सततं समुपासको यः ।
स पूजयेत्सविधिना रघुनाथ बाणं,
बद्ध्वा कराञ्जलिमथोप्रणतिप्रकुर्यात् ॥

"जिसका सुयश संसार में व्याप्त है, जो श्रीरघुनाथ जी का सच्चा उपासक है जिसका महान् श्रेष्ट प्रभाव है ऐसा सद्गुरु विधान पूर्वक श्रीरघुनाथजी के धनुर्बाण की पूजा करे तथा हाथ जोड़ कर शिष्यके कल्याणार्थ धनुर्बाण की प्रार्थना करे ॥

अग्नौ विशुद्ध हविषा विविधैः सुगन्धै-
र्होमं सुवेद विधिना शरशार्ङ्ग मन्त्रैः ।
अष्टोत्तरं शतमथो जुहुयात्सुभक्तो,
रामंस्मरेद्धृदिसदा जनकात्मजाढ्यम् ॥

सुन्दर प्रज्वलित विशुद्ध अग्नि में विविध प्रकार के

शुभ सुगन्धि सम्पन्न हविषों द्वारा धनुर्बाण मन्त्रों से १०८ बार आहुतियां देवे। तथा हृदयमें जगच्छरण्य प्रभु श्री राम तथा वात्सल्य रस सम्पन्ना जगज्जननी श्रीजनकात्मजाजीके दिव्य स्वरूपका ध्यान धरे।

---

*प्रेरकं बाणवृन्दानां रामचाप नतोऽस्म्यहम्।
चक्रानन्त पतिं तीक्ष्णं रामबाणमहं भजे॥

अमर रामायण में भी—

राम ब्रह्म राजपुत्र हस्तेऽजस्रं विराजितौ॥
सूर्यानन्त प्रभावन्तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१४५॥
असुराणां घातकौ च सुराणां भयनाशकौ॥
निहितेभ्यो मोक्षदौ च धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१४६॥
स्वचिन्ह बाहु मूलेभ्यः सीतारामांघ्रि भक्तिदौ॥
श्रीराममुष्टि शोभाण्तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१४७॥
ध्यातानंद करौ दिव्यौ योगिनां ध्यान दुर्लभौ॥
नित्यं रामायुधाख्यौ तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१४८॥
ममशूलाच्छक्तिशूलाद्विष्णुचक्रात्परात्परौ॥
दिप्यन्तौ राममुष्ट्या श्री धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१४९॥
असुरेभ्यो भीतकाभ्यां सुरेभ्यः शरण प्रदौ॥
भूमि भारहरावेतौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१५२॥

ये धनुर्बाण प्रार्थना मन्त्र हैं।

तप्तंधनुः शरमथो खलु तत्र होमे,
प्रेम्णांकितं सुमनसा च गुरु प्रकुर्यात् ।
देशेषु चैव सकलेष्वपि सर्वकाले,
वर्णाश्रमाश्च सकलांकित पुण्यपुञ्जाः ॥

पश्चात् उस होममें सुन्दर शुद्धमनसे उन धनुर्वाणों को स्थापित करे, बाद श्रीगुरु महाराज उन संतप्त मुद्राओं द्वारा शिष्यको अङ्कित करे, समस्त देशोंमे, सर्वकालमें, समस्त वर्णवाले, तथा सर्वआश्रम वाले, हरेक जीव उपरोक्त विधिसे धनुर्बाणादिकों से अङ्कित होने पर सम्पूर्ण पुण्योंके पुञ्ज बन जाते हैं ।

वामेकरे च धनुषा च शरेण सव्ये,
यश्चांकितो हि मनुजो नरलोक धन्यः ।
तस्मै नमन्ति शिरसा द्रुहिणादिदेवा,
स्तद्दर्शनेन मनुजा किलकल्मषघ्नाः ॥

इस प्रकार वाम हाथमें धनुष तथा दहिने हाथमे वाणों से जो मनुष्य अङ्कित होता है वह मनुष्य समस्त मानव-देह धारियों में परम श्रेष्ठ है उसको ब्रह्मादिक देवता मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं तथा उस मनुष्यके शुभदर्शन से अन्य मनुष्योंके भी समस्त पापोंके प्रबल पहाड़ विदीर्ण हो जाते हैं ॥

श्रीनारद पञ्चरात्रान्तर्गत वाल्मीकि संहिता में भी—

धन्वनेति जपन्मन्त्रं शार्ङ्ग पाणिं च संस्मरन् ।
बाह्वोर्वामस्य मूलेतु धनुषा तापयेद्गुरुः ॥
तथा सुपर्णमित्यादिमृजीत इति चादरात् ।
जपन्दक्षिण मूलेतु बाणाभ्यामंकयेत्पुनः ॥

"धन्वना गा धन्वना जिजयेम धन्वना तीव्राः समदो-जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो-जयेम ॥ इस यजुर्वेदके मन्त्रका शुद्ध शब्दोंसे प्रेमपूर्वक श्रद्धा सह उच्चारण करके शिष्यके वाम हस्तके बाहु मूलमें गुरु तप्त धनुष को अङ्कित करे तथा— 'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्ता गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता । यत्रानरः सञ्च विच द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥

इस श्रुतिको उच्चारण करके एक बाण तथा—

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ इस मन्त्र द्वारा शिष्यको दक्षिण भुजामें आदर पूर्वक दूसरे बाणको अङ्कित करे । अर्थात् क्रमशः दोनों मन्त्रों को उच्चारण करके दो बाणों द्वारा दक्षिण बाहु मूलको अङ्कित करे ।

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में भी—

परीक्ष्य शिष्यं समुपासकं गुरु-
र्वर्षं समभ्यर्च्य च वह्नि देवताम् ।

व्रतादिभिर्हैतिवरैः सुतापितै-
र्दिनेऽनुपूर्णे नियतः समंकयेत् ॥

जितेन्द्रिय, शान्तचित्त, गुरु एक वर्ष तक शिष्य की शुद्ध निष्ठा की परिक्षा करके भगवत्प्रेमनिष्ठ आचार्य इष्टदेव की उपासना कर के। उपासना करने की चाहना रखने वाले शिष्य को विधिपूर्वक वेदमन्त्रों द्वारा कुश कण्डिका आदिक विधि विधान पूर्वक पवित्र प्रज्वलित यज्ञाग्नि द्वारा प्रतप्त धनुर्बाणों को पवित्र दिन में शिष्य की भुजाओं में (बाहु-मूलों में) अङ्कित करे ॥

उपासित गुरोर्वर्षं विष्णोर्दास्यमभिप्सतः ।
विहिताः पञ्चसंस्कारा युक्तस्यानन्य चेतसः ॥

"सद्गुरु की वर्ष पर्यन्त प्रेमपूर्वक जिसने सेवा की हो, भगवान् के श्रीचरणों में दास्यभाव जिसका दृढ़ हो, प्रभु की दास्यता की चाहना वाला हो, भगवान् को छोड़ कर किसी अन्य विषयों में जिसकी वृत्ति प्रवृत्त (लीन) न हो ऐसे शिष्य को पञ्चसंस्कारों से संस्कृत करना चाहिये ॥

उपरोक्त शास्त्रीय वचनों को हृदय में धारण करके अपने अनेक प्रकारके विषैले विषयों से दंशित मनको म-हात्माओं के इन वचनों में स्वर मिलाकर समझाना

चाहिये कि:—

धरु धनुष बाण श्रीराम के ।
जो गति योग विराग ज्ञान तप जापकु आठौ याम के ।
सोई गति तेहि क्षण होत भुजाङ्कित शरदक्षिण धनु वाम के ॥
जो कोइ कोटिन्ह जन्म जन्म भरि कीन्ह कर्म विनु काम के ।
धनुष वाण अङ्कित होतहि ते अधिकारी परम धाम के ॥

—श्रीरामचरणदासजी ।

महा प्रबल कलिकाल सैन्यको मार भगाओ बीरो तुम ।
श्रीरामायुध धनुर्बाण धर नही डरो कुछ धीरो तुम ॥
तप्त धनुर्बाणों से अङ्कित मानव है भवदुख हारक ।
उसकी टूटी नैयाके बनते राम धनुष धारी तारक ॥
श्रीसीतारामनाम से अङ्कित जो धनुर्बाण धारण करता ।
उससे यमराजा कलिराजा भी हरदम रहता है डरता ॥
पाता है प्रेम परा भक्ति अति शीघ्र धनुर्बाणाङ्कित जन
सज्जनो बनो धनु बाणाङ्कित अब 'प्रेमनिधी' का मान वचन ॥

● ऊर्ध्वपुण्ड्र संस्कारः ●

हरेः पादाकृतिमात्मनोहितं मध्येछिद्रं ऊर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान्भवति स मुक्ति भाग्भवति ॥

—अथर्वणीयाश्रुतिः ।

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमेशितारं
नारायणं सांख्ययोगाधि गम्यम् ।
स्मृत्वा विमुच्येत नरः समस्तैः
संसारपाशैरिह चैव विष्णुः ॥

—महोपनिषदि

आत्मा के कल्याणार्थ श्री हरि पादाकृति मध्य में कुछ बीच देकर सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र जो कोई धारण करता है वह परमेश्वर का प्यारा हो जाता है, वह पुण्यवान हो

जाता है तथा मोक्ष का भागी बन जाता है।

"सांख्य योग द्वारा गम्य प्राप्य परमात्मा का सतत स्मरण करने वाला मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करता है वह इस संसार के समस्त बन्धनों से विमुक्त बन कर प्रभु के दिव्य धाम को सहज में प्राप्त कर लेता है"

उभाभ्यामपिरेखाभ्यां तिलकः परिगृह्यते ।
हरिपाद स्थितं विन्दु पीतं च परिधार्यते ॥
तिलकं रामरूपेण, विन्दुरूपेण भूमिजाम् ।
धृतेन रामभक्तानामग्रगण्यो गुणाग्रणी ॥
भ्रुवोन्तादपि चारभ्य ललाटान्ते च धारयेत् ।
मनोहरं तथा मध्ये अन्तरं युग्ममङ्गुलम् ॥

—अगस्त्य संहिता।

सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र दो रेखाओं द्वारा तिलक धारण करना चाहिये, हरि पादाकृति सुभग उन दोनों रेखाओं के मध्यभाग में पीत जो हरिद्रा उससे बनी हुई 'श्री' अथवा विन्दु धारण करना चाहिये। तिलक श्रीराम स्वरूप को तथा बिन्दु स्वरूपिणी श्रीजनकात्मजा जी को जो ललाट में धारण करता है वह समस्त राम भक्तों में अग्रगण्य है। दोनों भौंहों के मध्यभाग से आरम्भ करके ललाट के अन्त भाग तक मनोहर ऊर्ध्व युगल रेखायें धारण करनी चाहिये मध्य में दो अंगुल

के परिणाम से अवकाश रखना चाहिये तथा ठीक मध्य भाग में "श्री" करनी चाहियें।

बाल्मीकि संहिता में भी चतुर्थाध्याय में—

तस्य विष्णो महावाहो भक्तानां पुण्ड्रसंग्रहः।
उच्यते श्रूयतां सम्यक् सावधानेन चेतसा ॥

महा पराक्रमी भगवान् के परम प्रिय भक्तों से समाहृत पुण्ड्रों को मैं बर्णन करता हूं सावधान चित्त हो कर श्रवण करो।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदाकार्य्यं विष्णुभक्ति परायणैः।
पातित्यमन्यथा प्राप्य रौरवं नरकं ब्रजेत् ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो विष्णु भक्ति परायणः।
वीतपापः स धर्मात्मा स्वर्गलोकं समश्नुते ॥

विष्णु भक्ति परायण श्रीबैष्णव भक्तों को हमेशा ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना चाहिये, अन्यथा पतित हो करके मनुष्य रौरव नरक में जाता है। ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाला, भगवद्भक्ति परायण मनुष्य परम धर्मात्मा हो जाता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

हरेः पादाकृतिंकुर्यान्मध्यच्छिद्र समन्वितम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं स्वमोक्षाय दुःख नाशाय सर्वथा ॥
आचम्यैवोर्ध्वपुण्ड्रं तु विशुद्धया च मृदा सदा ।
कुर्य्या च्चाथान्तरालेषु हरिद्रा धारणं तथा ॥

हरि पादा कृति, परम दिव्य, मध्य में अवकाश सहित मोक्ष प्राप्त्यर्थ, तथा समस्त दुःख विनाशार्थ, हमेशा ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना चाहिये, आसन पर बैठ कर आचमन करके विशुद्ध मृत्तिका द्वारा सदा बीचमें दो अङ्गुल अवकाश देकर तिलक धारण करे तथा मध्य में हरिद्रा 'श्री' धारण करे।

रैवतकाश्चित्रकूटाद्याद्वाद्रेश्च वैष्णवः ।
मृत्तिका हरणंकुर्य्युरूर्ध्वपुण्ड्राय सर्वदा ॥
गंगायाः सूर्यकन्यायाः सरय्वा वा मृदा सदा ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं शुभं कुर्य्यु वैष्णवा धर्मरक्षकाः ॥

रैवती, चित्रकूट, यादवाद्रिक पवित्र स्थलों से तिलक करने के लिये श्रीवैष्णवों को मृत्तिका लानी चाहिये। गङ्गा, यमुना, सरजू तथा अन्य भगवद्रूपा पुण्य सलिला पावनतम मन्दाकिनी, कमला विरजादिक नदियों की पवित्र मृत्तिका द्वारा धर्म संरक्षक श्रीवैष्णवों को शुभ ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक

नित्य श्रद्धा सहित प्रेम भाव पूर्वक 'मैं साक्षात् श्रीप्रभुके श्रीचरणारबिन्दों को धारण करता हूं मेरा परम सौभाग्य है' इस प्रकार की उच्च भावना से तिलक धारण करे।

पूर्वं सिंहासनं कुर्य्युस्ततः पार्श्वद्वयं पुनः।
ततः पश्चाच्च तन्मध्ये लिखेयुः सुन्दरीं श्रियम् ॥
द्वादशानूर्ध्वपुण्ड्रांश्च कृत्वा वै संयतेन्द्रियः।
सन्ध्याभिवन्दनं कुर्य्यान्मोक्षकामः सदा द्विजः ॥

प्रथम भ्रू के मध्य भागमें सिंहासन करना चाहिये, बाद दोनों तरफ सुन्दर ऊर्ध्व रेखायें अङ्कित करनी चाहिये तत्पश्चात् मध्य भागमें परम मनोहारिणी श्री करनी चाहिये, सन्नियतेन्द्रिय, मोक्षकामुक ब्राह्मणों को तथा द्विजातियों को प्रेम पूर्वक द्वादश ऊर्ध्व पुंड्र तिलक धारण करने के बाद ही सन्ध्या बन्दनादिक शुभ क्रियायें करनी चाहिये।

ऊर्ध्वपुण्ड्रो मृदा शुभ्रो ललाटे यस्य दृश्यते।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥

—स्कन्द पुराण।

सुन्दर श्वेत मृत्तिका से किया हुआ ऊर्ध्व पुंड्र जिसके भाग्यवान् भालमें दिखलायी देता है वह चाण्डाल भी अत्यन्त विशुद्धात्मा बनकर सनातन परब्रह्म प्रभुके धामको सहजही प्राप्त कर लेता है। और भी शास्त्रीय बचन है :—

ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थिता लक्ष्मी ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थितो यशः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थिता देवारूर्ध्वपुण्ड्रे स्थितो हरिः॥

ऊर्ध्व पुण्ड्र में लक्ष्मी सर्बदा निवास करती है। ऊर्ध्व पुण्ड्र में सुयश सर्बकाल निवास करता है, ऊर्ध्व पुण्ड्र में समस्त देवता सब दिन बास करते हैं तथा ऊर्ध्व पुण्ड्र में सर्ब देव नमस्कृत निखिल जग पालक परमेश्वर भी सदा सर्बदा निवास करते हैं।

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते।
नामस्मृत्वा तथा भक्त्या सर्ब दान फलं भवेत्॥
ऊर्ध्व पुण्ड्रधरं विप्रं श्राद्धे यो भोजयिष्यति।
आकल्प कोटि पितरस्तस्य तृप्ताः न संशयः॥
ऊर्ध्व पुण्ड्रधरो यस्य कुर्य्याच्छ्राद्धं शुभानने।
कल्पकोटि सहस्राणि वैकुण्ठेवासमाप्नुयात्॥

पद्मोत्तरखण्ड।

ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाले ब्राह्मण के मुख कमल के दर्शन करने से मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त होता है तथा ऊर्ध्व पुण्ड्र धारक ब्राह्मण के पवित्र नामोच्चारण तथा नाम स्मरण करने से समस्त श्रेष्ट दान करने का फल प्राप्त होता है ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाले श्रीवैष्णव ब्राह्मण को जो श्राद्धमें भोजन कराता है उसके पितरगण करोड़ों वर्ष तक

परम सन्तुष्टता प्राप्त करते हैं इसमें कोई भी प्रकार का संशय नहीं है। हे शुभानने! ऊर्ध्व पुण्ड्र से सुशोभित पवित्र ब्राह्मण जिसका श्राद्ध कार्य सम्पादन करता है उसके पितर करोड़ों कल्प तक श्रीवैष्णव धाममें निवास करते हैं।

व्यालं दृष्ट्वा यथा लोके दर्दुरा भय कम्पिताः।
ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्किताात्तद्वद् कम्पन्ते यम किङ्कराः॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रेण संयुक्तो म्रियते यस्तु मानवः।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा विष्णु लोके महीयते॥
केवलस्योर्द्धपुंड्राणां धारणादपि मानवः।
देहजै पाप संघातैर्मुच्यते नात्र संशयः॥

—ब्रह्मरात्र।

बिषधर सांपको देखकर जैसे मनुष्य भय कम्पित होकर भागने लगते हैं उसी तरह तिलक धारी श्रीबैष्णव को देख कर यमगण त्रस्त हो जाते हैं। ऊर्ध्व पुण्ड्र धारक मनुष्य जिस किसी शुभ या अशुभ प्रदेशमें मरता है तो वह चाण्डाल भी क्यों न हो परन्तु प्रभुके नित्य धामका निवासी बनता है। केवल ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण मात्र से ही मनुष्य समस्त दैहिक पापों से तत्काल मुक्त हो जाता है। दिन रातमें किये हुए ज्ञानसे अथवा अज्ञान से पाप, प्रातःकाल ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने से अवश्य ही छूट जाते हैं।

एक अच्छे वयोवृद्ध महात्मा कथा सुनाया करतेथे कि-चित्रकूटके जङ्गलमें एक भील रहता था, वह जङ्गली जीवोंको मारकर अपना तथा कुटुम्ब का भरण पोषण करता था एकबार उसको किसी सन्तसे भेंट होगई, बात चीत होते-होते महात्माने उसे हिंसक वृत्तिका परित्याग करके प्रभु भजन करनेका सदुपदेश दिया।

सच्चे हृदयसे निकली हुई अवाज गोलीका काम करती है, सच्चे हृदयसे निकले हुए वचन बाणोंके समान हृदय में गड़ जाते हैं, महात्मा पहुंचे हुए सिद्धथे, उनके उपदेशने भीलके हृदय में बिजली का काम किया, उसका हृदय शुद्ध होगया, सन्तके बचनामृत की धाराने उसके पापोंको धोकर हृदय साफ कर दिया, वह महात्मा के चरणों में गिर पड़ा, तथा "मैं आपके शरणागत हूं आप मेरी रक्षा करें। मुझे भवसागर की उत्ताल तरङ्गों की इन कठोर ठोकरों की मर्माहत पीड़ासे मुक्त करें, प्रभुके दिव्यधामके सन्मार्ग पर आरूढ़ करें, ऐसी बड़े करुणा स्वरसे प्रार्थना की,

महात्माओं का हृदय कोमल रहता है 'गूढौ तत्व न साधु दुरावहीं। आरत अधिकारी जहँ पावहीं' इस भीलकी आर्तता देखकर महात्मा का हृदय द्रवित हो गया। और उसे वैष्णवी दीक्षा प्रदान करके भगवत्सेवाका अधिकारी बना दिया, उस

दिन से वह हिंसा त्याग कर प्रभु भजन करने लगा ।

वह प्रति दिन तिलक छाप धारण करता था उसके कण्ठमें अनवरत तुलसीकी मनोहर कण्ठी शोभा देती थी अर्थात् वह एक सदाचार परायण श्रीवैष्णव ही हो गया ।

एक समय वह जङ्गल में फल फूल, कन्द मूलादिक लेने को गया, अकस्मात् उसके मस्तक में असहनीय दारुण दर्द होने लगा वह एक पेड़ के नीचे मूर्छित होकर गिर पड़ा, कुछ देरमें उसी स्थल पर अपने पाञ्चभौतिक देहका परित्याग करके वह इस संसार से सदा के वास्ते बिदा हो गया ।

मरण समय में यमके दूत उसे लेनेके वास्ते आये, क्योंकि उन्होंने उसकी पूर्वावस्थाके पापोंका स्मरण करके उसे पापीही समझा था, ये नहीं जाना कि एक क्षण मात्र भी जो भगवत् स्मरण करता है उसके समस्त पाप पुञ्ज सद्यः विनाश हो जाते हैं ।

भगवान् की तो प्रतिज्ञा है यदि बातादि दोषेण यदि बात पित्त के प्रकोप के कारण व्यथित भक्त अन्त समय में मेरा स्मरण न करे परन्तु तो भी उसका स्मरण मैं खुद करता हूं और उसे मेरे परम दिव्य धाममें ले जाकर सुख पूर्बक बसाता हूं । अतः आज इस भक्तको यदि भगवान् भूल जाते तो उनकी प्रतिज्ञा पर पानी फिर जाता । इस लिये प्रभुने शीघ्रही अपने

नित्य पार्षदोंको बुलाकर कहा कि "चित्रकूट के जङ्गल में एक मेरे भक्तका मरण हुआ है, उसके पूर्व कृत पापों का स्मरण करके यमदूत उसकी आत्माको नरक में ले जाना चाहते हैं परन्तु वह मेरा भक्त है देखना उसके मस्तक पर सुन्दर ऊर्ध्व पुण्ड्र अभी तक सुशोभित है तथा कण्ठमें कण्ठलग्ना तुलसी मालिका ज्यों की त्यों अभी तक है, जाओ शीघ्र उसे आदर पूर्वक मेरे पास ले आओ, तथा उसे कष्ट से विमुक्त करो।

भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य्य करके श्रीराम-पार्षद शीघ्रही उस भक्तके पास पहुंचे तथा यमदूतों को समझा दिया कि जिसके गले में तुलसी माला हो, वाहुमूलोंमें तप्त भगवदायुधों के चिन्ह हो तथा जिसके ललाट में ऐसा (अपने ललाट में किये हुए तिलक को दिखाकर) सुन्दर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक हो और जो श्रीरामनामका उच्चारण करता हो उसे फिर इस प्रकार कभी दुःख न देना, क्या तुम अपने मालिक की यह आज्ञा भूल गये कि "परिहर मधुसूदन प्रपन्नान्।

यों कहकर उस भाग्यवान् भक्तको बड़े आदर के साथ अपने साथ विमान में बैठाकर, दिव्य धाममें ले गये।

देखिये, भगवद्भक्तों की अप्रतिम महिमाका कैसा सुन्दर दृश्य है। कुछ रोज श्रीवैष्णव धर्मकी श्रद्धासे सेवा करने वाला भील किस परमोच्च पदका अधिकारी हो गया? इसी

लिये तो धर्मशास्त्र बारम्बार मुक्त कण्ठसे कह रहे हैं कि—

ऊर्ध्वगत्यां तु यस्येच्छा तस्योर्ध्वपुण्ड्रमुच्यते ।
ऊर्ध्वगत्वा तु देवत्वं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥
ऊर्ध्वं नयति यत्पुंड्रं प्राणिनां पाप कारिणाम् ।
तस्याख्याह्यूर्ध्वपुंड्रेति तस्माद्धारयेद्द्विजाः ॥

—बृहन्नारदीय ।

ऊर्ध्व लोकों में, ऊंचे जाने की जिसको इच्छा हो उसको प्रतिदिन ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना चाहिये । ऊर्ध्व पुण्ड्र धारक ऊर्ध्व लोकमें जाकर देवत्व प्राप्त करता है इसमें कोई भी प्रकार की शङ्का नहीं है, जो तिलक पाप करने वाले जीवों को भी शीघ्रही पाप मुक्त करके ऊंचे ले जाता है उसको विद्वान् लोग ऊर्ध्व पुण्ड्र कहते हैं । अतः धर्म परायण द्विजों को प्रति दिन ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना चाहिये । कारण कि बिना ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किये किया गया शुभ कर्म निष्फल है । साक्षात् भगवद्वाक्य है कि :—

यः करोत्यूर्ध्वपुंड्रं तु सन्ध्यावाहन कर्मसु ।
तेनाहं सुलभो ब्रह्मन्नेकस्मिन्नेव जन्मनि ॥
तप होम जपाश्चैव सर्वा पुण्या क्रियास्तथा ।
विफलिष्यन्ति विप्राणामूर्ध्वपुंड्र विना कृताः ॥

तप, होम; अर्चन, जपादिक समस्त पुण्य क्रियायें यदि

बिना ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किये की जाती है तो वे सब निष्फल हो जाती हैं :इसलिये ब्राह्मणों को प्रति दिन ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना चाहिए। जो मनुष्य सन्ध्यावाहन कर्ममें ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करता है तथा मेरा भजन करता है। हे ब्रह्मन्! उसको मैं एकही जन्म में सुलभता से प्राप्त हो जाता हूं।

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन्।
शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुंड्राङ्कितो नरः॥

—ब्रह्माण्डपुराण।

अशुची, अनाचारी, मनसे भी पाप करने वाला, यदि नित्य ललाट में ऊर्ध्व पुण्ड्र अङ्कित करता है तो वह मनुष्य निश्चय ही परम पवित्र हो जाता है।

अन्यत्र भगवद्वचन है कि :—

सर्व वर्णेषु मद्भक्ताः कुर्वीरन्नूर्ध्वपुंड्रकम्।
ब्राह्मणाश्च विशेषेण जप होम परायणाः॥
मदाराधनकाले च सदा यज्ञादि कर्मणि।
अवश्यं धारयेदेतदूर्ध्वपुंड्रं द्विजोत्तमः॥

सर्व वर्णाश्रम धर्मनिष्ट मेरे भक्तों को नित्य ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना चाहिए। विशेष करके जप होम परायण ब्राह्मणों को अवश्य ही ऊर्ध्व पुंड्र धारण करना चाहिए। मेरे आरा-

धन समय में तथा यज्ञादिक शुभ कर्मों में द्विजोत्तम को ऊर्ध्व पुंड्र धारण करना परमावश्यक कर्त्तव्य है।

यज्ञोदानं जपो होमः स्वाध्याय पितृ कर्म च।
वृथा भवति विप्रेन्द्र ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥
—बृहन्नारदीय।

हे विप्रेन्द्र! यज्ञ, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृकर्म, ये सब बिना ऊर्ध्व पुंड्र धारण किये बिल्कुल निष्फल हो जाते हैं।

यागो दानं जपो होमः स्वाध्याय पितृ तर्पणम्।
भस्मी भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विनाकृतम्॥
यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रं विना भवेत्।
तं दृष्ट्वा गगने सूर्यो निरीक्ष्य साधुभिः सदा॥
—ब्रह्मरात्र।

याग, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृ तर्पणादिक समस्त कर्म ऊर्ध्व पुंड्र धारण किये बिना यदि किये जाते हैं तो वे सब निष्फलता को प्राप्त होते हैं। जिस मनुष्य के ललाट में पवित्र पापनाशक ऊर्ध्व पुंड्र नहीं है उसका मुंह देखने बाद जब सूर्यका दर्शन किया जाता है तब पाप निवृत्त होता है अतः जब कभी ऐसा मौका पड़े तब गगन में सूर्य दर्शन करने के पश्चात् कोई शुभ कार्य में प्रवृत्त होवे।

गृहस्थो ब्रम्हचारी च वानप्रस्थो तथा यतिः ।
अवश्य धारयेत्पुण्ड्रं पुण्यमूर्ध्वं सुशोभनम् ॥
ऊर्ध्वं पुण्ड्रं मृदाधार्यं विप्रेण ब्रम्ह वादिना ।
उद्धृतासीति मन्त्रेण वैष्णवेन विशेषतः ॥

—ब्रह्माण्डपुराण ।

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, तथा सन्यासी प्रत्येक आश्रम वालों को महान् पवित्रतम, सुशोभित ऊर्ध्व पुंड अवश्य धारण करना चाहिए । "उद्धृतासि वराहेण" इस वेद मन्त्रका उच्चारण करके चित्रकूटादिक पवित्र स्थलों की मृत्तिका द्वारा ब्रह्मवादी ब्राह्मणों को विशेषतः श्रीवैष्णवों को अवश्य ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण करना चाहिए ।

ब्रह्माण्डे भगवद्वाक्य —

सान्तरालमृजुं सौम्यं सुपार्श्वं सुमनोहरम् ।
यः करोत्यूर्ध्वपुण्ड्रं स ममातीव प्रियो भवेत् ॥

मध्य भागमें कुछ अन्तर छोड़कर सुमनोहर दोनों पार्श्व भागमें दो ऊर्ध्व रेखाओं से संयुक्त जो मनुष्य पवित्र सौम्य तथा सुशोभित ऊर्ध्व पुण्ड्र करता है वह मनुष्य मेरा अतीव प्रिय हो जाता है ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा कुर्य्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम् ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्र धरो यस्तु श्राद्धंकुर्य्याच्छुभाननै ।
कल्पकोटि सहस्राणि गया श्राद्ध फलं लभेत् ॥

—पद्मपुराण ।

दैवकार्य, पितृकार्य, तथा अन्य शुभ कार्यों में शुभ्र ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण करना चाहिए क्योंकि पितृकर्ममें यदि त्रिपुंड्रधारी कार्यकर्ता होता है तो पितरगण खेदमान कर पीछे पांव लौट जाते हैं। हे शुभानने! ऊर्ध्व पुंड्रधारण करनें वाला बिप्र जिसका श्राद्धकर्म करता है उसको हजारों वार किये गये गयाश्राद्ध का फल प्राप्त होता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा धार्यं यतीनां च विशेषतः।
भस्म चन्दन गन्धादीन् वर्जयेद्यावदायुषम् ॥

--वृद्धमनुः।

ऊर्ध्वपुण्ड्र नित्य मृत्तिका द्वाराही लगाना श्रेष्ठ है विशेष कर यतियोंको सन्यासियोंको प्रतिदिन मृत्तिका द्वारा ही ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना चाहिये, भस्म, चन्दन, तथा अन्य गन्धादिकों द्वारा तिलक लगाना जीवन पर्यन्त छोड़दे।

नासिका मूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत्।
नासिका तृतियो भागः नासिका मूलमिष्यते ॥

नासिका का तृतीय भाग नासिका मूल कहलाता है उस नासिका मूलसे प्रारम्भ करके केश पर्यन्त ऊर्ध्व रेखाओंसे ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। ब्रह्माण्डे भगवद्वाक्य—

ऊर्ध्वपुण्ड्र धरो मर्त्यो गृहे यस्यान्नमश्नुते।
तदा त्रिंशत्कुलं तस्य नरकादुद्धराम्यहम् ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने वाला मनुष्य श्रीवैष्णव जिसके घरमें भोजन करता है उसके तीस पीढी पर्यन्त समस्त कुल

को नरक से उसी क्षण में उद्धार कर देता हूं। विधान पारिजाते पाराशर माधवीये च।

ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीनस्य स्मशान सदृशं मुखम्।
अवलोक्य मुखं तस्य ह्यादित्यमवलोकयेत्॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीन मनुष्यका मुख स्मशान सदृश गर्हित है भाग्यवश यदि उसका मुंह देख लेवे तो आदित्य दर्शन करने से दोष निवृत्त होता है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्म समाचरेत्।
तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं च स गच्छति॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्रुति चोदितम्।
ऊर्ध्व पुण्ड्र विहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत्॥

हारितस्मृति।

ऊर्ध्वपुण्ड्र बिहीन मनुष्य सन्ध्या वन्दनादिक जो कुछ कर्म करता है उसको राक्षस लोग लेजाते हैं तथा उस ऊर्ध्व पुण्ड्र विहीन सन्ध्यादिक करनेवाले को नरकमें जाना पड़ता है। नित्य, नैमित्तिक, तथा काम्य तीनों प्रकारके वेद विहित शुभकर्म ऊर्ध्व पुण्ड्र विहीन होनेपर निष्फल होजाते हैं।

इस प्रकार वेद, शास्त्र, तथा सद्ग्रन्थों में ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करनेके विधायक सैकड़ों तथा सहस्रों प्रमाण उप-

लब्ध होते हैं अतः प्रत्येक मोक्ष कामुक मनुष्यको प्रतिदिन श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये ।

ऊर्ध्वपुण्ड्र है मोक्ष प्रदायक ऊर्ध्व पुण्ड्र है दुखहारक ।
ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने से हो जाता नर भवतारक ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्र विनु यज्ञ दान जप तप व्रत जो नर हैं करते ।
हो जाते हैं विफल तुरतही पाप ताप को नहिं हरते ॥
ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करके जो पुण्य कार्य शुभ है करता ।
कोटि कोटि गुण फल है पाता यमराजा उससे डरता ॥
ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने से प्रसन्न होते परमेश्वर ।
ऊर्ध्व पुण्ड्र अङ्कित बैष्णव की रक्षा करते हैं ईश्वर ॥
इसलिये सदा सबको सादर शुभ ऊर्ध्व पुण्ड्र करना चहिये ।
प्रभु प्रेमनिधी के चरणोंमें अपना मस्तक धरना चहिये ॥

महात्मा श्रीप्रेमलताजी ने ठीक ही कहा है—

तिलक देखि भूपति डरै भागहि भूत पिशाच ।
तिलक बिना जग जीव बहु नाचत नाना नाच ॥
तिलक करै धर्मातमा, बड़ भागी बुधिमान ।
पापिन्ह तिलक न भावहीं, ग्रसे मोह अज्ञान ॥

'श्री धारण प्रमाण'

हारिद्रेण तु चूर्णेन कुंकुमेन सुगन्धिना ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्येतु लक्ष्मीस्थानं प्रकल्पयेत् ॥
—भारद्वाज संहिता ।

हरिद्रा संयुक्त सुन्दर सुगन्धित कुङ्कम (श्री-रोली) से ऊर्ध्व पुण्ड्र के मध्य भागमें लक्ष्मीस्वरूपा श्री को धारण करना चाहिये। सनत्कुमार संहितायाम्—

विलोक्य दर्पणं विद्वानूर्ध्वपुण्ड्रं मनोहरम्।
कुर्यान्मङ्गलमाकांक्षन् हरिद्रा चूर्ण संयुतम्॥

विद्वान् श्रीबैष्णवोंको दर्पणमें देख करके मनोहर ऊर्ध्व पुण्ड्र करना चाहिये तथा मङ्गलाकांक्षी श्रीबैष्णव उस ऊर्ध्व दो रेखाओं के मध्य भाग में हरिद्रा चूर्ण द्वारा श्री को धारण करे।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्येतु श्रीचूर्णं परिधारयेत्।
श्रीकरं विजयं पुण्यं सर्वदोष प्रणाशनम्॥

—अत्रिस्मृति

ऊर्ध्व पुण्ड्र के मध्य भागमें श्रीचूर्ण द्वारा मनोहारिणी श्री को धारण करे। यह श्रीचूर्ण विजयप्रद धनप्रद तथा सर्व दोष नाशक, पवित्र पुण्य कर माना गया है।

अभिषिक्तं तु यच्चूर्णं विष्णु बिम्बे तु यो नरः।
हारिद्रं धारयेन्नित्यं सोऽश्वमेध फलं लभेत्॥

—श्रीविष्णु धर्मोत्तर।

सुन्दर अभिषिक्त श्रीदानी में रखी हुई हरदीसे बनी हुई श्री को जो वैष्णव धारण करता है वह प्रति दिन अश्वमेध यज्ञ फल प्राप्त करता है।

एवं द्वादश पुण्ड्राणि ब्राह्मणः सततं धरेत्।
अन्तरालेषु सर्वेषु हरिद्रां धारयेच्छ्रियम्॥

-पाद्म।

इस प्रकार श्रीवैष्णव ब्राह्मण को नित्य द्वादश ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने चाहिये तथा समस्त पुण्ड्रोंके मध्यमें हरिद्रा से बना हुई श्री को धारण करनी चाहिये।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्येतु विशाले सुमनोहरे।
लक्ष्म्या सार्द्धं समासीनो देवदेवो जनार्दनः॥

— पाद्मोत्तर खण्डे।

सुन्दर मनोहर विशाल उर्ध्वपुण्ड्के मध्यभागमें जो श्री है वह लक्ष्मी स्वरूपा है उसके सहित देव देव भगवान् भक्तोंके ललाट पटलमें सर्वदा उर्ध्वपुण्ड्र स्वरूपेण प्रेम सहित निवास करते हैं।

न सुवर्णादिभिः कुर्यान्नदार्व्यं बैल्वमेवच।
नारिकेल फलस्यैव श्रीचूर्ण पात्रमुच्यते॥
हारिद्रं पूरयेच्चूर्णं धारयेच्छ्रियं प्रीतये।
ब्रह्महत्यादिको दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति॥

श्रीदानी (श्रीरखनेकापात्र) न तो सुवर्णादिक धातुओंकी होनी चाहिये, न लकड़ीकी, न बेलकी, परन्तु नारियेलकी ही होनी चाहिये । नारियल की श्रीदानी में रखीहुई हरिद्रासे उत्पन्न श्री-श्रीवैष्णव भगवान श्रीविष्णुकी भक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रभुको प्रसन्न करनेको सर्वदा धारण करे। ऐसा करनेसे मनुष्य तत्काल ब्रह्महत्यादिक अनन्त पापोंसे विमुक्त होजाता है ।

शान्तिदानामिका प्रोक्ता मध्यमायुःकरी भवेत् ।
अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिका ॥

— हरिभक्तिविलास

अंगुष्टः पुष्टिदः प्रोक्तः मध्यमायुः करी तथा ।
अनामिका श्रियं दद्यान्मुक्तिं दद्यात्प्रदेशिनी ॥

—धर्म संग्रह ।

ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक यदि अनामिका अङ्गुलीसे कियाजाय तो शान्तिप्रद, मध्यमा आयुप्रद, अंगुष्ठ पुष्टिप्रद, तथा तर्जनी मोक्षप्रद है । इसलिये श्रीवैष्णवोंको अन्य आचमनी इत्यादिक साधन तथा अन्य अङ्गुलियों को त्यागकर केवल तर्जनी द्वाराही ऊर्ध्वपुण्ड्र करना चाहिये । क्योंकि इससे मोक्ष मार्ग शीघ्र निष्कण्टक बनता जाता है ।

आज काल यह एक नवीन सभ्यता चली है कि हरेक

आदमी कह बैठता है कि तिलक लगाने से क्या होता है? हृदय शुद्ध होना चाहिये तिलक कंठी तो बाह्याडम्बर मात्र है।

इस प्रकार कहने वाले भाइयों में जिनका हृदय प्रभुमय बना हो जो अन्तःकरण से प्रभु भजन करता हो वैसे तो सहस्त्रों में एक बड़ी मुश्किल से प्राप्त होंगे। अन्यथा बचनों द्वारा दूसरोंको उपदेश देना, यत्किञ्चित प्रभुतरफ प्रेम करता हो उसे भी व्यङ्ग बचनों द्वारा आहत करके भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करना यही एक मात्र मेरे इन भाइयों का कर्तव्य हो गया है। भला जिसको प्रभुसे कुछ भी प्रेम न होगा वह प्रभुके चिन्हों को क्यों धारण करेगा? जिसको जिस चीजके प्रति कुछ प्रेम होता है, जो मनुष्य जिस चीजमें अपना कुछ हित समझता है प्रायः उसी बस्तु का ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार जब जीव कुछ भी प्रभु से प्रेम रखता होगा तभी वह तिलक कंठी को धारण करेगा अन्यथा संसार में करोड़ों जीव पड़े हैं सब के सब क्यों तिलक कंठी धारण नहीं कर लेते हैं? हाँ, यह बात मानी जा सकती है कि उन कंठी तिलक धारियों में कोई विशेष भगवत्प्रेमी होता है, कोई कम, कोई जगत् को दिखलाने के वास्ते ही प्रभु भक्ति करता है परन्तु अन्त में उन सबको भगवत्प्राप्ति निश्चित ही है, क्योंकि एकही जन्ममें कोई सिद्ध नहीं हो जाता है। भगवान् का बचन है कि 'बहूनां जन्मना मन्ते" इस जन्म में भक्ति ढोंग से करता था, उसकी भक्ति अपरिपक्व थी परन्तु उसके हृदय में भक्ति का संस्कार जम-

जाता है, अङ्कुर पैदा हो जाता है बाद वही दूसरे जन्म में पौधा हो जाता है, यदि सत्सङ्ग मिला तो महान वृक्ष हो जायगा, यदि हवा पानी खराब हुआ तो तीसरे चौथे कभी न कभी वह एक उन्नत महाकाय विशाल भक्ति का कल्पवृक्ष हो जायगा जिसके आश्रय से अन्य अनन्त जीव सुख प्राप्त करके कृतार्थ हो जाँयगे। इसलिये किसी साधन भक्ति निष्ट साधक भक्तको इस तरह कोसना व्यङ्ग बचनों द्वारा अपमानित करना अपराध है विज्ञ सज्जनों को इस दोषसे सर्वदा बचे रहना चाहिए।

हमारे श्रीबैष्णव समाज के भी कतिपय महात्मा गण मनमानी चाल चलते हैं, कितने तो केवल नासिका मूलमे सिंहासन मात्र कर लेते हैं, कितने विभूति धारण मात्रसे ही तिलक का काम हो जाता है यों कह कर आलस्य वश तिलक नहीं करते हैं कितने भगवत्प्रसादी चन्दन ललाट में चर्चित कर लेते हैं तथा श्री अथवा ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण नहीं करते हैं, कितने प्रथम सेवा भगवत्पूजा कर लेते हैं बाद आसन पर बैठ कर तिलक धारण करके नित्य नियम मन्त्र जप करते हैं, कितने भगवान्‌के मन्दिरके अधिक कार्य करने वाले व्यवसायी महात्मा इस कार्य को करनेके बाद तिलक किया जायगा अब यह काम करके तब इसी प्रकार ऊर्ध्व पुण्ड्र से सर्वथा वञ्चित रहते हैं कभी कभी तो कई दिन बिना तिलक के व्यतीत हो जाते हैं परन्तु इन्हें बुरा लगेगा कार्यकर्ता हैं इस

सङ्कोच तथा भयसे कोई इनसे कुछ कहता नहीं है। परन्तु इन सब भाइयों को स्वतः निज धर्म समझ कर विचार करना चाहिये तथा बिना कहे सुने स्नान के बाद प्रथम सुन्दर दिव्य ऊर्ध्व पुण्ड्र ललाट में धारण करके तब किसी कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। गृहस्थ श्रीवैष्णवों को इस नियम का आनन्द पूर्वक अखण्ड पालन करना चाहिये। प्रभु भक्ति केवल विरक्तों के लिये ही नहीं है किन्तु प्राणिमात्रके लिये है इसलिये गृहस्थ विरक्त सब प्रकार के श्रीवैष्णवों को तथा भगवत्प्रेमी सज्जनों को अवश्य ही सदा सर्वदा तिलक कण्ठी तथा तप्ता-युधादिक धारण करना आवश्यक कार्य है।

नाम संस्कारः ।

योजयेन्नामदासान्तं भगवन्नाम पूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभाजी भवेन्नरः ॥

—पाराशर ।

भगवन्नाम जिसके पूर्वमें हो तथा भगवद्दास्यता का सूचक शब्द जिसके अन्तमें हो ऐसा नाम श्रीवैष्णवों को रखना चाहिये इससे समस्त पाप विनाश हो जाते हैं तथा समस्त पुण्यों का उदय होता है ।

इसी आशय को हृदय में धारण करके हमारे पूर्वज प्रायः अपनी प्रजाका तथा शिष्यों का रामचन्द्रदास, भगवान्दास, जानकीदास, वैष्णवदास, इत्यादिक नाम रखते आये हैं प्रायः आज काल भी समस्त प्रदेशों में इसी प्रकार के नाम विशेष पाये जाते हैं ।

"यशस्य नक्षत्राश्रयं नामधेयं देवताश्रयम्,,
—कृष्ण यजुर्वेद।

"यशस्वी पुरुषका नक्षत्रानुसार देवताश्रय सूचक भगवद्दास्यताका सूचक नाम रखना चाहिये।

पञ्चसंस्कार संयुक्तो दासान्तं नाम चावहन्।
—बाल्मीकि संहिता।

"श्रीवैष्णवों को पञ्चसंस्कार संयुक्त होकर दासान्त नाम धारण करना आवश्यक कर्तव्य है"।

शास्त्र तो कहते हैं कि—

सोऽहं सोऽहं परित्यज्य दासोऽहं यो वदेत्सदा।
वैष्णवः स जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम्॥

'सोऽहं', वह ब्रह्म मैं ही हूं, इस प्रकार का व्यर्थ प्रलाप करना त्याग कर मैं उस परब्रह्मका दास हूं, सेवक हूं, इस प्रकार से जो मनुष्य कहता है तथा हृदय में समझता है, वह श्रीवैष्णव जगत्पूज्य है, तथा प्रभुके धामको प्राप्त करता है।

दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत्।
आत्मदास्यं हरेः स्वाम्यं स्वभावं च सदास्मर॥

ब्रह्मादिक समस्त देवताओं से लेकर यह समस्त विश्व

अखिल ब्रह्माण्ड नायक प्रभुका चरण सेवक ही है। इस लिए हे जीव! मैं उसी सर्वेश्वर का अकिञ्चन सेवक हूं, तथा वह दीन दयालु प्रभु ही मेरा मालिक है। इस प्रकार अपने स्वभाव का सर्वदा स्मरण बनाये रह।

दास्यभावका वेद पुराणों में अनन्त महत्व वर्णित है। हमारे शास्त्र, सन्त तथा सद्ग्रन्थों में दास्य भावकी अपरिमित महिमा पायी जाती है।

नैसर्गिकं तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम्।
तद्विनावर्तते मोहात्संसारे जीव सर्वदा॥
तस्मात्तु भगवद्दास्यमात्मनां श्रुति बोधितम्।
दास्यं बिना कृतं यत्तु तदेव कलुषं भवेत्॥

—वृद्ध हारीत।

जीवों का नैसर्गिक स्वभावही भगवत्सेवा करना है यदि परब्रह्म सनातन प्रभुकी सेवा त्याग कर जीव अन्यान्य उपायान्तरों में फंसता है तो वह इस संसार सागर का कभी पार नहीं पा सकता है। इसलिये श्रुति बोधित दास्यभाव प्रत्येक जीवों को हृदय में रखना चाहिए। दास्यभाव बिना जो कुछ कार्य किया जाता है वह कलुषित हो जाता है। श्रुति भी कहती है कि —

योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।

किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥

जैसा आत्माका भगवच्छेष स्वरूप है उसका ज्ञान भुला कर जो अन्यान्य अन्यथा ज्ञान विपरीत ज्ञानमें प्रवृत्त होकर अपना स्वरूप भूल जाता है। क्या उस आत्मापहारी मनुष्य ने चोरी का पाप नहीं किया है ? अर्थात् दास्यभावको त्याग कर जो मनुष्य अन्य मार्गों में प्रवृत होता है वह भगवान् का चोर है, आत्मा को छिपाने वाला है, इसी वास्ते तो प्रभुके प्यारे भक्त निरन्तर प्रार्थना करते हैं।

त्वय्युपभुक्त स्रग्गन्ध वासोऽलंकार चर्चितः।
उच्छिष्ट भोजिनो दासा तवमायां जयेमहि ॥

भा० ११-६ उद्धवः।

हे नाथ ! आपकी पहिरी हुई प्रसादी माला, सुगन्ध, वस्त्र, अलङ्कार, चन्दन तथा आपका उच्छिष्ट भोजन इत्यादि का सेवन करके हम आपके चरणों के दीन सेवक अत्यन्त उग्र माया को सहजही में जीत लेंगे।

सच्चा भगवद्भक्त प्रभुचरणोंमें प्रणाम करताहुआ आर्तस्वर से यही प्रार्थना प्रतिदिन करता है कि—

जन्मप्रभृति दासोऽस्मि शिष्योऽस्मि तनयोऽस्मिते।
त्वञ्चस्वामी गुरुर्माता पिता च मम राघव ॥

हे राघव ! मैं जन्मसेही आपके चरणों का दीन सेवक हूँ दासहूं, शिष्यहूं, तथा पुत्रहूं आपही मेरे स्वामी, गुरु, माता, तथा पिताहो । पुनः पुकारता हूं कि-

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापिवैश्यो न शूद्रो ।
नो वा वर्णी नच गृहपति र्नो वनस्थो यतिर्वा ॥
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्द पूर्णामृताब्धेः ।
सीताभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥

मैं ब्राह्मण नही हूं, मैं क्षत्रिय राजा नही हूं, मैं वैश्य नही हूं, मैं शूद्र भी नही हूं, मैं किसी वर्णका नही हूं । मैं गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी नही हूं, मैं इन सबसे विलक्षण हूं (आत्मा तो ये सब होता नही है) किन्तु मैं तो अखिल परमानन्द के सागर श्रीसीताकान्त प्रभु श्रीराम-चन्द्रजी के चरणों के सेवकों के सेवकों का सेवक हूं । इस लिये तो काष्ट जिह्वदेव स्वामीने कहा है कि-

" अहं भावकोधूप बनायो । मन्दिरमें मह मह महँकायो । दास्यभाव तन मनमें छायो । गुरु अस राह बताई,, ॥

दास्यान्त नाम रहनेसे उठते, बैठते, किसीको बुलाते, हर समय " मैं भगवान् का दास हूं " इस दिव्यज्ञान की स्मृति बनी रहती है । अहं भावका नाश होता है जो स्वतः

सेवक है वह अहंकार किसपर करेगा ? उसका अहंकार तो-

अस अभिमान जायजनि भोरे ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

यही एक सात्विक भावके रूपमें परिणत होजाता है । वह तो अपने को सर्वेश्वर सर्वसुखप्रद श्रीचरणों का सेवक समझ कर ही आनन्दके मारे फूला नही समाता है । जिस समय रावणके दरबारमें पवनात्मज श्रीहनुमान् जी गये तव रावणने पूछा है तुम कौन हो ? अपना परिचय बताओ ? इस पर श्रीहनुमान् जी ने किस शानसे उत्तर दिया है-

दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः ।
हनुमाञ्छत्रु सैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥

मैं भगवान् श्रीकोशल नरेश श्रीरामचन्द्र जी महाराज का दास हूं, मेरा नाम हनुमान् है, मैं पवनपुत्र हूं मैं समस्त शत्रुओं की सैन्या को विध्वंस करनेमें परम समर्थ हूं, दो कौड़ि पानेवाले आजकालके सिपाही राज्यके सेवक होनेके कारण अभिमानके पूतले बन जाते हैं । किसीसे नम्र भावसे बोलना भूल जाते हैं । क्योंकि वे सरकारी है । इसी तरह प्रभुके सेवकगण भी प्रभुकी चपरास पञ्चसंस्कार धारण करते हैं तव परम समर्थ बन जाते हैं उस समय वानर, नाग, देव, दानव, किसीका भय नही मानते हैं ।

भयङ्कर कालसे भूपालसे नर नाग दानवसे।
भक्त नही खौफ खाता है श्रीसीताराम स्वामीका॥

वे तो समस्त पाप तापोंका तथा यमदूतोंका मुख भञ्जन करके प्रभुके दिव्य धामको चले जाते हैं समस्त देवता उनके पूजक बनते हैं और वे जगत्पूज्य बनते हैं। सहज ही में उतनी उच्च पदवी प्राप्त करनेपर भी भक्त प्रभुसेवक अपनी नम्रताका परित्याग नही करते, वह सदैव नम्रभावमें ही स्थित रहते हैं यही तो उनकी भारी विशेषता है। दास्य भावका उत्कर्ष बतलाते हुए शास्त्र कहते हैं-

ददाति परमां मुक्तिं सद्यो भुक्तिं विशेषतः।
तेन दासेति सम्प्रोक्तं सर्वागम विशारदैः॥

परममुक्ति तथा भोग ऐश्वर्य जीवोंको अत्यन्त शीघ्रतासे प्राप्त होते हैं अतः दास इसप्रकार का नाम भगवन्नाम पूर्वक रखनेकेलिये सर्वशास्त्र विशारद विद्वान् अपनी सम्मति देते हैं।

न वेद यज्ञाध्ययनै र्न व्रतैश्चोपवासकैः।
प्राप्यते वैष्णवं लोकं विनादास्येन कर्हिचित्॥
तस्माद्दास्यं हरेर्भक्त्या भजेतानन्य मानसाः।
प्राप्नुवन्ति परांसिद्धिं कर्मबन्ध विमोचिनीम्॥

—पद्मपुराण।

न वेदाध्ययन से, न यज्ञानुष्ठान से, न व्रतों से, न उपवासों से प्रभुका धाम प्राप्त हो सकता है, बिना दास्य-भावके प्रभुके धामकी प्राप्ति अत्यन्त असम्भव है इस वास्ते दास्यभाव ग्रहण करके परमात्मा की प्रेम पूर्वक भक्ति करना चाहिए, दास्यभावना ही परम सिद्धि प्राप्त करवाने वाली तथा कर्मबन्धन की नाशक है ।

न दासा वासुदेवस्य सर्वलोकेश्वरस्य ये ।
तेषां हि नरके वासः कल्पायुष शतैरपि ॥

सर्व लोकेश्वर भगवान् के जो दास नहीं हैं उनको सैकड़ो कल्पों तक नरक में बास करना पड़ता है तथा कठोर नारकी वेदनायें भोगनी पड़ती हैं। श्रीहारितस्मृति में भी स्पष्ट शब्दों में कहा है।

गुणयोगेन चान्यानि विष्णुनामानि लौकिके ।
विशिष्टं वैष्णवं नाम सर्वकर्मसु वोधितम् ॥
परम्परा गुरुर्नाम इच्छाच्छिष्यं सुतं तु वा ।
तस्माद्भगवतो नाम सर्वेषां श्रुति चोदितम् ॥

प्रभुके दिव्यगुणों से युक्त नामों के सहित दासान्त नाम श्रीवैष्णवों को रखना चाहिए, यह सर्व शुभ कर्मों का सद्यः फल प्रदायक है। अपनी परम्परानुकूल शिष्यका तथा पुत्रका भगवत्सम्बन्धि नाम रखना चाहिए। यह समस्त वेद

शास्त्र तथा सज्जन सम्मत कार्य है।

शक्त्यावेशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः।
नाम दद्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥
यस्य वै वैष्णवं नाम नास्ति माङ्गल्यकारकम्।
अनामकः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥

शक्ति तथा आवेशावतारोंका सम्बन्ध रखनेवाले नाम वैष्णवोंको प्रयत्नतः परित्याग करने चाहिये। शुद्ध श्रीराम-नाम, गुण, लीला, धाम, सम्बन्धि पवित्र नाम ही भगवत्से-वकों का धारण करने चाहिये *। जिसको माङ्गल्य कारक श्रीवैष्णव नाम नही है वह अनामक है तथा शुभकर्मों मे त्याज्य है ॥

---

* हमारे श्रीवैष्णव समाजमें कितने सीधे सादे महात्मा अपने शिष्योंका जो कुछ मनमें आया नाम धर देते हैं। मोतीदास, हीरादास; पर्वत दास; शीतलदास, देवीदास, महादेवदास, माखणदास. लोटादास, खूबदास, इत्यादि परन्तु इस प्रकार नाम धर देना उचित नहीं है ऐसा नाम धर देने के बाद शिष्य जब कुछ ज्ञान प्राप्त करता है तथा अपने नामका अर्थ विचारता है तब उसे असह्य क्लेश होता है अतः सोच विचार कर खास भगवत्सम्बन्धि नाम धरने उचित हैं।

दद्यान्नाम दासान्त भगवन्नाम प्रपूर्वकम् ।
दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम् ।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरये व्रजेत् ॥
विष्णोर्दास्य पराभक्ति येषां तु न भवेत्क्वचित् ।
तेषामेव हि संसृष्टं निरयं ब्रह्मणा नृप ॥
जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः ।
नास्ति चेद्वैष्णवं नाम येषां वै द्विजसत्तम ॥

अतः भगवन्नाम पूर्वक दासान्त नाम देना चाहिये दास्य ही परम धर्म है। दास्य ही परमहित है, भगवान्की दास्यता ही मुक्ति प्रदायिका है। विनादास्य भावके अवश्यही नरक जाना पड़ता है। जिसको भगवान्के श्रीचरणोंमें दास्या-रति नहीं है उन्हीं पापियों के वास्ते हे नृप! ब्रह्माने नरक बनाया है। वे द्विजसत्तम होते हुए भी चाण्डालो से भी अधम है जिनका भगवत्सम्बन्धी वैष्णव नाम नही है।

इत्यादि सैकड़ों तथा सहस्रों प्रमाण दास्यभाव संयुक्त नाम रखनेके विधायक शास्त्रोंमे पाये जाते हैं।

अजामिल की कथा जगत्प्रसिद्ध है। वह एक महा पापाचरणी क्रूर तथा दुर्विनीत ब्राह्मण था। उसके द्वार एक बार कई साधु पहुंच गये, पूर्वकाल के सुकृत से उसकी बुद्धि

ने पलटा खाया। वह साधुओं के चरणों में गिर पड़ा तथा अपने उद्धार के वास्ते उपाय पूछा, महात्माओं ने उसे छोटे पुत्रका नाम नारायणदास रखने के लिये कहा, तथा उसीसे तेरा उद्धार हो जायगा, यह बतलाया. अन्त में उसने महात्माओं के बतलाये मार्गानुसार ही अनुसरण किया, उसके मृत्युके अन्तिम श्वास के समय उसी पुत्रके नामका स्मरण आया, तथा वह प्रेम विह्वल होकर अपने पुत्रको पुकारने लगा, नारायणदास को प्रेमाधिक्य के कारण नारायण कह करही वह पुकारता था, अन्तमें उसी नारायण के नाम लेते लेते उसने प्राण छोड़ दिए तथा वह दिव्य विमान में आरूढ़ होकर प्रभु धामको पहुंचा।

कहने का मतलब की भगवत्सम्बन्धी दासान्त नाम रहनेसे मनुष्य को भगवत् स्मरण बना रहता है तथा 'साङ्केत्य· रीत्याथ' इस भागवत के बचनानुसार किसी तरह भगवन्नामो· च्चारण होने से मनुष्य के पाप विनाश होते जाते हैं और सद्यः पवित्र होकर भगवत्सेवाका परमाधिकार प्राप्त कर लेता है।

अतः बुद्धिमान् मनुष्यों को प्रभु को सेवा स्वीकार करनी चाहिए। क्योंकि —

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजिय राम सब काम तजि, अस सिद्धान्त विचारि॥

इस पवित्र, परमश्रेष्ठ, दास्य भावकी प्राप्ति के लिए हमेशाँ प्रभुके चरणों में सादर प्रार्थना करनी चाहिए कि —

जेहि जेहि योनि कर्मवश भ्रमहीं। तहँ तहँ ईश देहु यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होहु नाथ यहिं ओर निबाहू॥

प्रभु प्रार्थना के प्रबल प्रभाव से आप दास्यरति शीघ्र ही प्राप्त कर सकोगे और मस्ताने भक्त की वाणीमें स्वर मिलाकर प्रेम सहित होकर गाने लगोगे कि —

अब तो दास भये हैं खासे, सियबर रूप पियासे।
आइ दीनता बात बनी सब, सियजूकी करुणासे॥
अहङ्कार का कूड़ा पटका, वेदाग्निन्ह के बासे।
ईर्षा खाज धरी गोरुन में, क्रोध साँप के डाँसे॥
सब अवगुण निंदकके सिरधरि, नित मनबढ़त हुलासे।
द्वैत सदा अद्वैत कबहुं नहिं, चौड़े कहहुँ खुलासे॥
दास्य भावका डङ्का बाजे, वेदन्ह की महिमा से।
मङ्गलमय दिशि विदिशि हमारे, सकल अमंगलनाशे॥
रामदेव के नामदीप से, अन्दर भवन प्रकाशे॥

—काष्ठजिह्व देवस्वामी।

दास प्रभुके हैं सदा मालिक हमारे राम हैं।
दास्यता है प्राण धन मम और सब बेकाम हैं॥
दास्यता सूचक प्रभुकी सुखद जिसका नाम है।
इहलोक में परलोक में पाता वही सम्मान है॥
हे प्रभो! हम भी बनें अब तव चरण के दास।
प्रेमनिधि के पद्मपदका अब हमें विश्वास॥

मन्त्रसंस्कारः ।

तापं पुण्ड्रं तथा नाम कृत्वा वै विधिना गुरुः ।
पश्चादध्यापयेन्मन्त्रं शिष्यं निर्मल चेतसम् ॥

--पाराशर ।

“विधान पूर्वक ताप, पुण्ड्र, तथा नाम, इन तीनों संस्कारों से संस्कृत कर लेने के बाद आचार्यवर्य अपने पवित्र मन वाले शिष्यको मन्त्रोपदेश करें ।”

श्रीमन्त्रराज श्रीराम-मन्त्रका माहात्म्य वेद शास्त्रों में बहुत विशेषता के साथ पाया जाता है यहां पर मैं केवल

पाठकों की सेवा में उन शास्त्रों के थोड़े से प्रमाण उद्धृत करके दिग्दर्शन मात्र कराता हूं। श्रीरामतापनी उपनिषद्—

"अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्यो-
वाच श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्य मनुब्रूहीति।
सहोवाच याज्ञवल्क्यः॥

स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्यैक चिन्मयः।
तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरः स्मृतः॥ १॥
अखण्डैकरसानन्दस्तारक ब्रह्मवाचकः।
रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्द चिदात्मकः॥२॥
नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैक कारणम्।
सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षवः॥३॥

श्रीभारद्वाज महर्षि प्रश्न करते हैं कि हे श्रीयाज्ञवल्क्य-जी! श्रीराममन्त्रराजका क्या माहात्म्य है कृपा करके वर्णन करें। श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले हे भारद्वाज! जो स्वतः प्रकाश-मय ज्योतिस्वरूप है आनन्द सागर है. चिन्मय है वह अनन्त गुणमय "रां" श्रीराममन्त्रराजका पहिला अक्षर है। अखण्ड एकरस, तारक ब्रह्मवाचक, सच्चिदानन्द विग्रह "रामाय" यह श्रीराम-मन्त्रराजका मध्यगत पद है, तथा पूर्णानन्दका एक मात्र कारण, जिसको समस्त देवता तथा मुमुक्षु नमन करते हैं तथा जिसका हृदयमें ध्यान करते हैं उसी परब्रह्म

श्रीरामजी के चरणों की सेवा (बन्दना) करना जिससे बोधित होता है वही 'नमः पद श्रीराममन्त्रराजका अन्तिम पद है। यह षडक्षर श्रीरामतारक मन्त्रराज है।

य एवं मंत्रराजं श्रीरामचन्द्रस्य नित्यमधीते सोऽग्निाना पूतो भवति। सवायुना पूतो भवति। स आदित्येन पूतो भवति। स सोमेन पूतो भवति। स ब्रह्मणा पूतो भवति। स बिष्णुना पूतो भवति। स रुद्रेण पूतो भवति। स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। सर्वक्रतुभिरिष्टवान् भवति। तेनेतिहास पुराणानां रुद्राणां शत सहस्त्राणि जप्तानि सफलानि भवंति। श्रीरामचंद्रमनुस्मरणेन दश पूर्वान् दशोत्तरान् पुनाति। स पंक्ति पावनो भवति। स महान् भवतीति।

--सामवेद पिप्लायन शाखा।

जो इस षडक्षर श्रीराममन्त्रराजका नित्य ही जप करता है, वह अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्र, ब्रह्मा, बिष्णु, रुद्र तथा समस्त देवताओं करके परम पवित्र होता है, वह समस्त यज्ञ फलों को प्राप्त करता है, वह इतिहास, वेद पुराण पाठ तथा रुद्रमन्त्र सैकड़ों हजार जप करने का फल प्राप्त करता है। श्रीराममन्त्र के स्मरण मात्र से ही दश पूर्व दश पर तथा अपना (इक्कीस पीढी का) उद्धार कर देता है। वह जिस

पंक्ति में बैठता है उस पंक्ति भरके मनुष्यों को पावन कर देता है। वह महात्मा हो जाता है।

श्रीमैथिली महोपनिषद् में भी --

ते ह पुनरेनामूचुः। षट्स्वपि मंत्रेषु कतमो मंत्रो गरीयान्। कमभिमन्त्र्य स्वकं कल्याणमभिपश्यामः। तन्नो ब्रूहि महेश्वरि।

हे महेश्वरि! आपने जो ऊपर छ मन्त्र बतलाए उनमें कौन मन्त्र श्रेष्ठ है। कौन मन्त्र विशेष फल दाता है। किसका जप करके हम सब शीघ्रातिशीघ्र अपने कल्याण को देख सकेंगे। वह हमें कृपा करके बतलावें।

महर्षियों के इस प्रश्नको सुनकर जगदम्बा श्रीजानकीजी ने उत्तर दिया कि --

"सर्व एव मंत्राः सुखप्रदाः शुभप्रदाः क्षेमप्रदाः धनप्रदाः एकमप्यक्षरमुच्चारितं शतजन्माभिरर्जितानि महापातकान्यपि विनाशयति। तत्रापि षड्क्षरो मंत्रः सर्वोत्कृष्टः आशु फलप्रदः। सर्वमेव-वाञ्छितमभिपूरयति॥

सब मन्त्र सुखप्रद हैं, शुभप्रद हैं, कल्याणप्रद हैं, धनप्रद हैं, एक अक्षर भी उच्चारण करने से शतजन्मार्जित

पापों का आत्यन्तिक विनाश हो जाता है, महापातक भी नाश हो जाते हैं। परन्तु उन सब मन्त्रों में षडक्षर मन्त्रराज सर्वोत्कृष्ट है, शीघ्र फल प्रदायक है, सर्व प्रकार की वाञ्छित सिद्धि देने वाला है।

श्रीकाशी पुरीमें मृत्यु होनेसे मुक्ति प्राप्त होती है "काश्यां मरणान्मुक्ति" काशी में मरने से जीव मुक्त हो जाता है। इसका एक मात्र यही कारण है कि जीव जब मरने लगता है उस समय भगवान शङ्कर उन मरणोन्मुख जीवों के दक्षिण कर्ण में षडक्षर श्रीराममन्त्र सुनाते हैं उसी की वजह से जीव मुक्त होजाते हैं। श्रीरामतापनी उत्तरार्द्ध में एक आख्यायिका है कि—

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तर सहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्-श्रीरामः प्राह शङ्करम्।
वृणीष्वयदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ॥

"श्रीशङ्करजीने हजारों मन्वन्तर तक जप, होम, पूजन आदिक शुभकर्म करते हुए भगवान् श्रीरामजीके मन्त्रका जप श्रीकाशी में किया तब सर्व देव शिरोमणि भगवान् श्रीराम प्रसन्न हुए, तथा प्रकट होकर श्रीशङ्करजी से बोले कि हे

ईश्वर! बरदान मांगो, मैं तुम्हारे पर अत्यन्त प्रसन्न हूं जो तुम्हारा अभीष्ट हो मांगो, प्रभु श्रीरामजीके इन अमृतोपम बचनोंको श्रवणकर शङ्करजी बोले कि —

मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गंगायां वा ततो पुनः।
म्रियते देही त्यजन्तो मुक्तिं नातो वरान्तर॥

हे नाथ! मणिकर्णिका पर अथवा मेरे क्षेत्रमें अथवा गङ्गा किनारे जो मनुष्य देहको त्यागकर मरण को प्राप्तहो वह मुक्ति प्राप्त करले बस, यही वरदान चाहता हूं, मैं और कोई भी चीजकी कामना नहीं रखता हूं। इस बरदान को सुनकर भगवान् श्रीरामजीने कहा कि हे शङ्कर!

क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश! यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमि कीटादयोऽप्याशु मुक्ता सन्तु न चान्यथा॥
त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्र सिद्धास्यु रन्ते मां प्राप्नुवन्ति ते॥
मुमूर्षोः दक्षिण कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्षासि मन्मन्त्रं स पूतो भविता शिव!

हे देवेश! तुम्हारे इस काशीक्षेत्रमें कृमी, कीट, पशु आदिक जीव भी मरण प्राप्त करेंगे, इस क्षेत्रमें कहीं भी मरेंगे तो वे सब अवश्य ही विमुक्त हो जांयगे इसमें कोई भी प्रकार

की शङ्का नहीं है, आपके द्वारा अथवा * ब्रह्माजीके द्वारा जो कोई इस संसार भरमें श्रीराममन्त्र षडक्षरको प्राप्त करेंगे वे जीते जी मन्त्र सिद्धि को प्राप्त करेंगे तथा अन्तमें मुझे प्राप्त होंगे। हे शिव! काशीमें जो जीव मरता हो उसके दाहिनें कानमें तुम मेरे इस षडक्षर मन्त्रराजका उपदेश करना वह अवश्य मुक्त हो जायगा।

इस प्रकार बरदान प्राप्त करनेंके बाद श्रीमहादेवजी अपनी काशीपुरीमें मरने वालोंको मोक्ष प्रदान करनेमें समर्थ भये, और भी श्रुति इस बातका प्रतिपादन करती है।

"जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे"

---

* नोट- तात्पर्य यह है कि श्रीरामजीने श्रीजानकीजी को मन्त्रराज दिया, श्रीजानकीजीने श्रीहनुमान्‌जीको श्रीहनुमानजी ने श्रीब्रह्माजी को, कल्पान्तरों में श्रीरामजी ने ही श्रीब्रह्माजीको श्रीराम-मन्त्र प्रदान किया, बाद आगे क्रमशः, परम्परया जगत् में मन्त्रराज मुमुक्षुजीवों को प्राप्त हुआ उसीको दर्शाते हुए कहा गयाहै कि "त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि" देखिये श्रीगुरु परम्परा" इस श्रुतिसे यही परम्परा जो श्रीअग्र-स्वामीजीकी लिखी है वही प्रामाणिक सिद्ध होती है। जिस परम्परा में श्रीमन्नारायण से श्रीराम-मन्त्र प्रचलित है वह अप्रामाणिक है।

--प्रकाशक।

इससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि श्रीराममन्त्र शीघ्र मुक्तिप्रद है।

शान्तः प्रसन्नो वरदो ह्यक्रोधो भक्तवत्सलः।
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते॥

—अगस्त्य संहिता।

यह श्रीराममन्त्रराज परम शान्त है, बरदायक है, अक्रोधी है (अर्थात् मन्त्र जापकके दोषों को देखकर क्रुद्ध नहीं हो जाता प्रत्युत उनका अपने प्रभाव से निवारण कर देता है) तथा भक्त वत्सल है ऐसा मन्त्र (इसके समान मन्त्र) जगत् भरमें अन्यत्र कहीं पर नही है।

श्रीरामाय नमोऽह्येतत्तारकं ब्रह्मनामकम्।
नाम्नांविष्णोः सहस्राणां तुल्य एष महामनुः॥
अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाकृताः॥

—हारीतस्मृतिः।

"श्रीरामायनमः" यही तारक ब्रह्मबाचक षडक्षर श्रीराम-मन्त्रराज है भगवान् बिष्णु के हजारहों नामों के समान इस एकही मंत्रका प्रबल प्रभाव है, भगवान् के और भी अनेकों मंत्र हैं परंतु इस मंत्रराजकी समानता को प्राप्त कर सकें वैसे कोई भी हैं ही नहीं।

गर्भ जन्म जरा मरण संसार महद्भयात्तारयतीति तस्मादुच्यते षडक्षरं तारकमिति,,

—श्रुतिः।

गर्भ, जन्म, मृत्यु, जरा, तथा इस संसार की महान् भयानकता से जो स ः तार देता है उसका नाम है "तारक" श्रीराममंत्रमें यह गुण दूसरों की अपेक्षा अत्यधिक है, इस लिये यह श्रीतारक मंत्र कहलाता है।

य एतत्तारकं नित्यमधीते स पाप्मानं तरति। स मृत्युं तरति। स भ्रूण हत्यां तरति। स ब्रह्म हत्यां तरति। स वीर हत्यां तरति। स सर्व हत्यां तरति। स संसारं तरति। स विमुक्ताश्रितो भवति। स महान् भवति। सोऽमृतत्वं च गच्छतीति।

–इति श्रुतिः।

जो इस श्रीरामतारक मन्त्रका नित्य अनुष्ठान करता है वह समस्त पापोंसे तरजाता है। वह मृत्युसे तरजाता है वह बाल हत्यासे तरजाता है। वह ब्रह्महत्यासे तरजाता है वह वीरहत्या से तरजाता है। वह समस्त हत्याओं से तरजाता है। वह संसार सागर से तरजाता है। वह विमुक्तों से आश्रित होजाता है। वह महान् होजाता है। वह अमृत तत्वको प्राप्त कर लेता है।

षडक्षरोऽयं मन्त्रस्यात्सर्वाघौघ निवारकः।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः॥
आब्रह्मबीज दोषाश्च नियमाति क्रमोद्भवाः।
स्त्रीणाञ्च पुरुषाणाञ्च मन्त्रेणानेन नाशिताः॥

—मत्स्यपुराण।

यह षड़क्षर मन्त्रराज समस्त पापसमूहों का नाशक है यह सर्वमन्त्रों मे उत्तमोत्तम है। यह मन्त्रराज कहलाता है। समस्त जितने दोष हैं। जो नियमोंके व्यतिक्रमों द्वारा उत्पन्न होते हैं वे सब इस मन्त्रद्वारा विनाश होजाते हैं स्त्रीयों के तथा पुरुषोंके समस्त दोष यह मन्त्र शीघ्र नाश कर देता है।

सर्वेषां राममन्त्राणां श्रेष्टं श्रीतारकं परम्।
षडक्षर मनु साक्षात्तथा युग्माक्षरं वरम्॥
सहस्रनाम सदृशं विष्णोर्नारायणस्य च।
षडक्षरं महामन्त्रं रघुणां नायकस्य च॥

—पद्म पुराणे।

समस्त श्रीराममन्त्रोंमें तारक मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ट है। षडक्षर श्रीराममन्त्र तथा द्वि अक्षर 'राम' मन्त्र परम श्रेष्ट हैं। भगवान् विष्णु, नारायणादिक अनेकों सहस्रों भगवन्नामों के महत्वके समान रघुकुलोत्तम भगवान् श्रीरामजीके षडक्षर महामन्त्रका महत्व है, यह बड़ा प्रतिभावान् मन्त्र है।

राममंत्र प्रभावेण स्वयंभूः सृजते जगत्।
विभर्ति सकलं विष्णुः शिवः संहरते पुनः॥

—महाशम्भु संहिता।

श्रीराममन्त्रराज जपके प्रभावसे ही जगच्छ्रष्टा ब्रह्मा जगत् बनाते हैं, भगवान् विष्णु राममन्त्र जपके प्रभावसेही जगत् का पालन करते हैं, तथा रुद्र इस मन्त्रराजके ही प्रभाव से जगत्का संहार करते हैं अर्थात् श्रीराममन्त्रके प्रभाव द्वारा ही तीनों देवता जगतन्त्र चलाने में समर्थ हुए हैं।

अहं च शङ्करो विष्णुस्तथा सर्वे दिवौकसाः।
राम मंत्र प्रभावेण सम्प्राप्ताः सिद्धिमुत्तमाः॥

—विरञ्चि सर्वस्वे।

श्रीब्रह्माजी कहते हैं कि मैं शङ्करजी तथा विष्णु भगवान, तथा अन्य समस्त देवतागण श्रीराममन्त्रराजके प्रभाव से ही उत्तमा सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

देवो नारायणः साक्षाद्राममन्त्र प्रभावतः।
यथार्थं सोऽपि जानाति तत्वं राघव सीतयोः॥

—भुशुण्ड रामायण।

"देव श्रीनारायण भगवान् श्रीरामजीके मन्त्रराजके जपके प्रभावसे श्रीसीतारामजी महाराजके तत्वको जानते हैं इस वचन से ज्ञात होता है कि श्रीमन्नारायणजी भी श्रीराममन्त्रका जप निरन्तर करते हैं। तथा

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः ।
जानाति भगवाञ्छम्भुर्ज्वलत्पावक लोचनः ॥

बृहद्ब्रह्म संहिता ।

श्रीराममन्त्रराजके माहात्म्यको गिरिजापति, ज्वलन्त पावकके समान नेत्र वाले भगवान् श्रीशङ्करजी जानते हैं इससे श्रीशङ्करजीको श्रीराममन्त्र निष्ठा ज्ञात होती है ।

अश्वमेध सहस्राणि वाजिमेध शतानि च ।
एकतः सर्वतीर्थाणि दानव्रत तपांसि च ॥
एतानि राममन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
सर्वेषां मंत्रवर्गाणां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
तेषु वैष्णवमंत्रेषु राममंत्र फलाधिकः ॥

—सदा शिव संहिता ।

हजारों अश्वमेध यज्ञ, सैकड़ों वाजिमेध यज्ञ, इस पृथिवी भरके समस्त तीर्थ, दान, व्रत, तपादिक समस्त साधन, श्रीराममन्त्रराजकी सोलहवीं कलाको भी किसी अंशमें प्राप्त नहीं कर सकते, समस्त मन्त्रोंमें वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ हैं परन्तु उन श्रीवैष्णव मन्त्रोंमें भी श्रीराममन्त्रराज अत्यन्त उच्चतम फल प्रदायक है ।

नारायणः स्वयंभूश्च शिवश्चंद्रादय स्तथा ।
सनकाद्याश्च योगींद्रा नारदाद्या महर्षयः ॥

सिद्धाः शेषादयाश्चैव लोमशाद्या मुनीश्वराः ।
लक्ष्म्यादिशक्तयः सर्वे नित्यमुक्ताश्चपार्षदाः ॥
मुमुक्षवश्च मुक्ताश्च ऋषयश्च शुकादयः ।
तत्प्रभावं परं मत्वा राममंत्रमुपासते ॥

—वशिष्ठ संहिता ।

नारायण, ब्रह्माजी, शङ्कर, चन्द्र, इन्द्र तथा सनकादिक समस्त योगीन्द्र, नारदादिक समस्त महर्षिगण सिद्ध, शेषादिक नाग, लोमशादिक समस्त मुनीश्वरगण, लक्ष्मी आदिक समस्त शक्तियाँ, नित्यमुक्त* हनुमदादिक प्रभुपार्षद, मुमुक्षु, मुक्त, ऋषिगण, शुकदेवादिक परमहंस, श्रीरामजी महाराजके प्रभावको समझकर श्रीराममन्त्रराजकी प्रतिदिन प्रेम श्रद्धा तथा आदर पूर्वक उपासना करते हैं ।

मंत्रस्तेष्वप्यनायास फलदोऽयं षडक्षरः ।
षडक्षरोऽयं मंत्रस्तु सर्वाघौघ विनाशकः ॥

---

* नित्यमुक्त, मुमुक्षु, मुक्त, इत्यादिक जीवोंके स्वरूपों को समझना हो तो "कल्याण कल्पद्रुम" नामक ग्रन्थकर्ताकी पुस्तक देखो, पता पीछेके पेजमें देख लेना चाहिये ।

—प्रकाशक ।

दैनंदिनं च दुष्कृत्यं पक्षमासतु वर्षजम् ।
सर्वं हरति निःशेषं तूलाचलमिवानलः ॥

—अगस्त्य संहिता ।

समस्त मन्त्रों में यह षडक्षर मन्त्रराज अनायासही शीघ्र फल प्रदायक है । यह षडक्षर श्रीराममन्त्र समस्त अघों के प्रचण्ड समूहों को सद्यः विनाश कर डालता है । प्रत्येक दिनका प्रत्येक पक्षका, प्रत्येक मासका, प्रत्येक ऋतुका, तथा प्रत्येक वर्षका दुष्कृत्य यह षडक्षर मन्त्रराज शीघ्र नाश कर देता है । जैसे रुई [कपास] के पर्वतको जलानेमें अग्निको कुछ परिश्रम नहीं होता है थोड़ी देरमें जलाकर खाक कर देती हैं वैसे ही पापों के समूहों को श्रीराममन्त्र दावानलके समान अत्यन्त शीघ्र अविलम्बेन दहन कर डालता है ।

षडक्षरो वन्हि पूर्वस्तारकस्त्वभिधीयते ।
महापातकिनां पाप दहने दहनोपमः ॥

—पञ्चरात्र ।

"वन्हि बीज पूर्व है जिसके ऐसा षडक्षर श्रीराममन्त्रराज तारकमन्त्र कहलाता है यह महान् पातकियों के पाप पुञ्जों को नाश करनेके लिये [जलानेके वास्ते] अग्नि के समान है ।

श्रीरामेतिपरं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥

—सनत्कुमार संहिता ।

"श्रीराममन्त्रही परम जाप्य है, तारक है तथा ब्रह्म-वाचक है, ब्रह्म हत्यादिक महान पापों के विनाश कर डालने को परम समर्थ है, तथा वेद वेदान्त विज्ञ विद्वान् जनों द्वारा यह परमादरणीय है ।"

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शम्भु रकारात्सर्व शक्तयः ॥
बीजे यथास्थितः वृक्षः शाखा पल्लव संयुतः ।
तथैव सर्ववेदाश्च रकारे सुव्यवस्थिताः ॥
आदावन्ते तथा मध्ये रकारस्तु प्रतिष्ठितम् ।
विश्वं चराचरं सर्वमवकाशेन नित्यशः*॥
यथा करण्डे रत्नानि गुप्तान्यत्र न दृश्यते ।
तद्वन्मन्त्राश्चवेदाश्च रकारे सुव्यस्थिताः ॥

—पुलह संहिता ।

रकारसे ही ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, रकारसे ही भगवान् विष्णु तथा श्रीशङ्कर । रकारसे ही समस्त शक्तियां उत्पन्न होती हैं जैसे वटके छोटेसे बीज में शाखा पल्लव

* यहां पर 'पतत्' इतना अध्याहार कर लेना चाहिए ।

संयुक्त एक महा विशाल वृक्ष गुप्त रहता है उसी तरह श्रीराममन्त्र के बीज रेफ में अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड, समस्त वेद गुप्तरूपसे स्थित है. भूमि तथा जलके संयोग से जैसे उसी छोटेसे बीजद्वारा ही भीमकाय वृक्ष पैदा होजाता है वैसे भक्त की श्रद्धा तथा गुरु महाराज की दयामयी दृष्टिसे पोषित श्रीराममन्त्र समस्त अभिष्ट प्रदाता होजाता है तथा उसकी शीतल कृपारूपी छाया के सुखका आस्वादन करके साधक (मन्त्र जापक) श्रीवैष्णव कृतार्थ हो जाता है। यह समस्त ब्रह्माण्ड आदि, अन्त तथा मध्यावस्था में रकार में ही व्यवस्थित रहता है । जैसे रत्नों की खानमें अनेकों असीम मूल्यवान् रत्न भरे रहते हैं परन्तु अज्ञानी जीव उन्हें नही पहचानता, और निकट रहते हुए दुःख सहता है वैसे ही श्रीराम मन्त्र में समस्त वेद, सामर्थ्यप्रद मन्त्र, समस्त देवता तथा समस्त सिद्धियां सर्वदा अविचल रूपसे निवास करती हैं परन्तु अज्ञानी जीव उन्हें जान नही पाता है तथा वह अन्यान्य साधनान्तरों को साधकर कल्याणकामना करता हुआ जीवन को व्यर्थ बिता देता है। जब भगवत्तत्ववेत्ता महाभागवत श्रीआचार्य चरणों की प्राप्ति होती है तथा उनकी निष्काम सेवा करके जब जीव भगवद्रहस्य से ज्ञात होजाता है तभी वह अपने जीवन को सुखमय बनाकर अन्त में सर्वेश्वर के दिव्यधामको प्राप्त कर लेता है । इसी लिये तो शास्त्रकार मुक्तकण्ठ से ललकार रहे हैं कि—

नानेन सदृशो मन्त्रो मया दृष्टोहि कुत्रचित् ।
शैव वैष्णव सौरेषु गाणपत्येषु वा मुने ॥

—ना० पं० वृहद्‌ब्रह्म संहिता ।

हे मुने! मैंने इस मन्त्रराजके समान प्रबल तेजसम्पन्न मन्त्र शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, तथा गाणपत्योंमें कहीं भी नही देखा, इस मन्त्रके समान भक्तिप्रेम वर्द्धक, भुक्ति मुक्तिप्रद सुखकर तथा समर्थ मन्त्र जगत भरमें अन्यत्र कहीं भी है ही नही ।

रुद्रो दिशति यन्मन्त्रं यस्यनाम महद्यशः ।
यस्यनास्त्युपमा क्वापि तं रामं राघवं भजे ॥

—पद्म पुराण ।

रुद्र काशीमें मरनेवाले जन्तुओंको जिस मन्त्रका उपदेश देतेहैं, जिसके नामका महान् यश है, जिसकी उपमा लायक तीनों लोकोंमें कोई भी है नही वैसे श्रीराघवेन्द्र भगवान् श्रीरामका मैं सर्वदा भजन करता हूं ।

एकैकं रामनामस्तु सर्वं पाप प्रणाशनम् ।
सहस्त्र नाम समतां फलदं वेद विश्रुतम् ॥

—आनन्द संहिता ।

एक - एक श्रीरामनाम समस्त पापोंका विनाशक है तथा सहस्त्र नामके पुण्य फलके समान पुण्य फलप्रद है,

सर्व वेद विदित है । श्रीराम मन्त्रके तत्वोंको समझना बड़ा भारी कार्य है, हरेक जीव इसके निगूढ़तम रहस्यों से ज्ञात नही हो सकते हैं, बड़े - बड़े देवगण तथा महर्षिगण श्रीराम-मन्त्र तत्वकी गहरी गवेषणा निरन्तर करते रहते हैं परन्तु वे लोग भी अभी इसके रहस्योंको सर्वथा नही समझ सके । इस मन्त्रराजके तत्वकीतो—

श्रीराममन्त्र तत्त्वज्ञः श्रीरामानुचरो बली ।
नित्यो महाविभूतिस्थ ईशान्यां दिशि संस्थितः ॥

—ना० पं० बृहद्ब्रह्म संहिता ।

श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य सेवक महावीर श्रीहनुमानजी ही श्रीराममन्त्रके तत्वको पूर्ण रूपेण जानते हैं, वे महाविभूतिस्थ श्रीसाकेतधाममें ईशान दिशामें रक्षक रूपेण हमेशा वास करते हैं ।

राम एव परं ब्रह्म श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ।
राम एव परं तत्त्वं राम एव परं तपः ॥

—रामरहस्योपनिषद् ।

श्रीरामजी ही परम ब्रह्म है परात्परतम देव हैं श्रीराम मन्त्रही ब्रह्मतारक है, श्रीरामजी ही परम तत्व हैं । श्रीराम जोही परम तप हैं ।

विश्वरूपस्य ते राम विश्व शब्दाहि वाचकाः ।
तथैव मूल मन्त्रस्ते विश्वेषां बीजमक्षयम् ॥
अचिन्त्योऽयं महाबाहो मन्त्रश्चिन्तामणिर्विभो ।
विहायैनं विमूढात्मा इतश्चेतश्च धावति ॥

—स्कन्द पुराण ।

हे श्रीरामजी ! विश्वस्वरूप आपके वाचक जितने शब्द हैं वे सब विश्ववाचक हैं वैसे ही आपका षडक्षर मूल मन्त्र भी समस्त विश्वका अक्षय बीज हैं तथा समस्त मन्त्रोंका कारण है ऐसे अचिन्त्य, महाप्रबल मन्त्रस्वरूप चिन्तामणिको त्यागकर विमूढ़ जीव इधर उधर भटका करते हैं तथा अनेकों व्यथासे व्यथित रहते हैं परन्तु जिनको श्री राम मन्त्र स्वरूप चिन्तामणि हाथ लग जाती है उनका इधर उधर भटकना (दर-दर की खाक छानना) सर्वदा के वास्ते अवश्य ही छूट जाता है ।

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रह्म कथ्यते ।
सर्वैश्वर्य प्रदं नृणां सर्वकाम फलप्रदम् ॥
एतदेव परं मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादि देवता ।
ऋषयश्च महात्मानो मुक्ताः जप्त्वा भवाम्बुधौ ॥

श्रीदशरथ तनय श्रीरामजी का षडक्षर मन्त्र ही तारक ब्रह्म कहलाता है । यह समस्त ऐश्वर्य्य प्रद है तथा मनुष्यों की समस्त कामनायें परिपूर्ण करता है । यदी सर्व

श्रेष्ठ परममन्त्र है। इसीका जप करके ब्रह्मरुद्रादिक देवगण देवत्वको प्राप्त किये हैं तथा इसीका प्रेमपूर्बक जपकरके ऋषिगण तथा महात्मागण भवबन्धन से विमुक्त भये हैं।

"भूत प्रेत पिशाचाद्याः कुष्माण्डा ग्रह राक्षसाः।
दूरादेव प्रधावन्ति राममन्त्र प्रभावतः॥"
"अनेनाराधितोरामः प्रसीदत्येव सत्वरः।
ददात्यायुष्यमैश्वर्यं समानोत्तमतामपि॥
य एवमुक्तमार्गेण मन्त्राराधन तत्परः।
सकामोभुक्तिमाप्नोति निष्कामो मुक्तिमेवच॥
प्राप्नोत्युभयकामस्तु मुक्तिं भुक्तिं न संशयः।"

—अगस्त संहिता।

भूत, प्रेत, पिशाचादिक कुष्माण्ड, ग्रह, राक्षस, तथा और अनेकों उपद्रवकारक श्रीराममन्त्रके जापकको देखकर बड़ी दूर-दूर भागा करते हैं। इस मन्त्रद्वारा आराधित श्रीरामजी साधकपर (मन्त्रजापक पर) शीघ्र ही प्रसन्न होतेहैं जो उपरोक्त बतलाये विधानसे श्रीराममन्त्र का आराधन करता है वह समस्त भोग ऐश्वर्य तथा मोक्षको प्राप्त करता है भगवान् उसे अपने समान उत्तमता भी प्रदान करते हैं। सकामुक भक्त भोग ऐश्वर्यं, निष्कामभक्त मुक्ति तथा दोनोंकी चाह रखने वाला भुक्ति तथा मुक्ति दोनों प्राप्त करता है।

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं,
वेदाँश्चापि प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह वै देवमात्म बुद्धि प्रकाशं,
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

"इस श्रुतिमें 'वेद, शब्दसे समस्त वेदशास्त्रसार भूत "रां" बीजका प्रतिपादन कियाजाता है। तथा रम् धातु समानार्थक दिव् धातुसे निष्पन्न 'देव, शब्दसे सर्वदेव शिरोमणि भगवान् श्रीरामजी का प्रतिपादन कियाजाता है तथा मुमुक्षु शब्दसे नमः शब्दार्थका प्रतिपादन किया जाता है इस तरह इस वेदमन्त्र से राममन्त्र का उद्धार होता है। ऐसी ऐसी और भी अनेकों श्रुतियोंमें श्रीराममन्त्र का प्रतिपादन किया गया है। जो लोग कहा करते हैं कि राममन्त्र वैदिक नहीं है श्रीवैष्णव धर्म अवैदिक है उन्हें इन मन्त्रों को विचार पूर्वक देखने चाहिये, तथा इनके अर्थों को किसी वैष्णव विद्वान् से समझ कर अपने मन की सारी मुरादें मिटा लेनीं चाहिये। और जो लोग अपनी अज्ञता तथा पक्षपात के जालमें फंसकर श्रीराममंत्र राजको क्षुद्रफल प्रद बतलाते हैं उन्हें भी अनेक शास्त्रीय वचनों का अवलोकन करके अपने भ्रमको सैकड़ों तथा सहस्रों कोश दूर भगा देना चाहिये। "जिनखोजा तिन पाइया गहिरे पानी पैठ" इस रहस्यको जो मनुष्य जितनी श्रद्धा तथा आदर भावसे शास्त्रों में वेदों में तथा अन्य धर्मशास्त्रों में खोजेगा उसे उत-

नाही अधिक-अधिकतर प्रेम बढ़ता जायगा और एक दिन अवश्य ही समझ जायगा कि भगवन्नाम की तथा श्रीराम मन्त्रकी महिमा शास्त्रोंमें भरपूरहै तथा इसका महत्व अतुलनीय है। इसी वास्ते तो महारामायण में साफ लिखा है कि-

इत्यादयो महामन्त्रा वर्तन्ते सप्तकोटयः।
आत्मा तेषाञ्च सर्वेषाँ रामनाम प्रकाशकः॥
नारायणादि नामानि कीर्तितानि बहून्यपि।
सम्यग्भगवतस्तेषु राम नाम प्रकाशकः॥
ग्रहाणां च यथा भानुः नक्षत्राणां यथा शशिः।
नाम्नामेवहि सर्वेषां राम नाम प्रकाशकः॥

इत्यादिक सप्त करोड़ बड़े बड़े महामन्त्र हैं परन्तु उन सब मन्त्रों का आत्मा तथा प्रकाशक श्रीराममन्त्र ही है। नारायणादिक अनेकों भगवन्नाम हैं परन्तु उन सबमें श्रीरामनाम परम श्रेष्ठ तथा सबका प्रकाशक है। जैसे ग्रहों में सूर्य श्रेष्ठ है तथा, नक्षत्रों मे चन्द्रमा श्रेष्ठ है वैसेही समस्त भगवन्मन्त्रों में श्रीराममन्त्र महान् श्रेष्ठतम है।

श्रीरामचन्द्रमनुस्मरणेन गायत्र्याः शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति। प्रणवानामयुत कोटि जप फलानि भवन्ति॥ इति श्रुतिः॥

"श्रीराममन्त्र के स्मरणमात्रसे सैकड़ों हजार गायत्री जपका फल प्राप्त होता है तथा प्रणव का अयुत करोड़ जप करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह श्रीराममन्त्रके स्मरण मात्रसे ही प्राप्त होजाता है,, श्रीनारद पञ्चरात्रान्तर्गत बाल्मीकी संहिता में भी--

इदानीं कथ्यतेऽस्माभि युष्माकं पुरतोऽनघाः ।
माहात्म्यं राममन्त्रस्य श्रूयतामृषयो मुदा ॥
"रांरामायनमः" राम मन्त्रं यूयमवैत वै ।
यस्य श्रवणमात्रेण कोटि जन्म कृतान्यपि ॥
पापानि च विनश्यन्ति क्षणेनैव महर्षयः ॥

हे महर्षिगणो ! मैं इस समय आपलोगोंके सन्मुख श्री राममन्त्र का महात्म्य वर्णन करता हूं । हे निष्पाप महात्माओं ! आपलोग दत्त चित्त होकर श्रवण करो । "रांरामायनमः „ इसको आपलोग श्रीराममन्त्र जानो । जिसके श्रवण मात्रसे ही करोड़ों जन्मोपार्जित पाप सद्यः क्षणमात्र में विनाश होजाते हैं ।

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चापि गुणान्विताः ।
श्रद्धया परया युक्तास्ते च तस्याधिकारिणः ॥
राममन्त्र विहीनानां शुद्धकर्मवतामपि ।
विफला हि क्रिया सर्वा इति वेदेषु कथ्यते ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र सब कोई जो कोई भगवद्भजन स्वरूप सद्गुण सम्पन्न हों तथा श्रद्धा भक्ति युक्त हों वे इस मन्त्रके अधिकारी हैं। जो सब तरहके शुद्ध कर्मों के करने वाले हों परन्तु यदि श्रीराममन्त्र विहीन हों तो उनकी वे समस्त शुभ क्रियायें सद्यः निष्फल हो जाया-करती हैं। ऐसा वेद में कहा गया है।

वृथा धर्मो वृथा कर्म वृथा जीवनमस्ति च।
राममन्त्र विहीनस्य वेद विद्याविदोऽपि च॥
रकारादि मकारान्तं मन्त्रं नित्यं षडक्षरम्।
श्रीरामस्य जपन्नित्यं पारं भवति कल्मषात्॥

श्रीराममन्त्र विहीन यदि समस्त वेद, वेदान्त का पूर्ण विद्वान् भी हो तब भी उसका जीवन व्यर्थ है, उसका धर्म व्यर्थ है तथा उसका कर्म भी सर्वथा निष्फल ही है। रकारादि तथा मकारान्त षडक्षर श्रीराममन्त्रराजका जो प्रतिदिन प्रेम पूर्वक जप करता है वह निश्चय ही कलियुगके पाप समूहों से बिना परिश्रम के पार होजाता है।

रामतारक मन्त्रोऽयं महापातक नाशनः।
जन्म मृत्यु जरा व्याधि शोक मोहादि सञ्चयः॥
नश्यन्ति क्षणमात्रेण श्रद्धया जपतः सकृत्।
राममन्त्रं जपन्नित्यं विधिवत्पाप भागपि॥
भूत्वा निष्कल्मषा याति देहान्ते परमं पदम्।

जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्थाके दुःख, व्याधियां, शोक, मोहादिक उपद्रवोंके समूहोंका तथा महापापोंका नाशक श्रीरामतारक मन्त्रका जो श्रद्धा समेत एकबार भी जप कर लेता है तो उसकी समस्त आपत्ति विपत्तियोंका तथा पापोंका क्षणमात्र में नाश हो जाता है फिर वह अनेकों पापोंका करनेवाला ही क्यों न हो परन्तु निःसन्देह वह शीघ्रही पवित्रात्मा बन जाताहै ।

रामोऽहि देवता चास्य जानकी च ऋषिर्मता ॥
गायत्रिच्छन्द आस्येयं बीजं रां इति कथ्यते ।

इस श्रीराम मन्त्रके देवता सर्वेश्वर श्रीरामजी हैं । श्री जानकी ऋषि हैं । प्रवर्तिका है । गायत्री छन्द है । रां बीज है । जो इस श्रीराममन्त्र का विधिवत् अनुष्ठान करता है वह पवित्रान्तः करण बनकर अन्त में दिव्य भगवद्धाम की प्राप्ति करके परम कृतार्थता प्राप्त करता है ।

राममन्त्रस्य माहात्म्यं सर्वपाप हरस्य च ।
गीयते सर्वशास्त्रेषु वेदेषु च तथैव च ॥
मोक्षार्थी मोक्षमागच्छेत्पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां धनार्थी प्राप्नुयाद्धनम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां नास्तिकोऽपि च तादृशः ।
यं च नाराधितोदगाद्राममन्त्र : प्रतापवान् ॥

सर्व वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, तथा स्मृतियों में श्रीराममन्त्र की महिमा का गान किया गया है, यह समस्त पापो का हारक, दुःखविनाशक तथा सुखदायक है। मोक्षार्थि मोक्ष प्राप्त करता है। पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है, धनार्थी धन तथा विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में कोई भी ऐसी चीज नहीं है जिसको आराधना करनेपर श्रीराममन्त्र न देता हो अर्थात् जो इसकी आराधनो करता है उसको चारों फल करतलगत होजाते हैं तथा वह तृप्त होजाता है।

ब्रह्महत्या सुरापानं कनकाहरणं तथा।
सङ्गमो गुरुपत्न्या च महापातक उच्यते॥
महापातक नाशोऽपि मानवानां क्षणेन हि।
जपतो राममन्त्रस्तु भवतीह न संशयः॥
"एवं माहात्म्य संयुक्तो राममन्त्रो विशेषतः।
मोक्षप्रदो महामन्त्रो मन्त्रराज प्रशस्यते॥

ब्राह्मण बध करना, मदिरापान करना, सुवर्णकी चोरी करना, गुरु पत्नी गमन करना ये महापातक कहलाते हैं परन्तु इन महापातकों से युक्त मनुष्य भी यदि श्रीराममन्त्र का जप करता है तो उसके पाप छूट जाते हैं। तथा वह पवित्र होजाता है इसमें कोई भी प्रकार का सन्देह नहीं है। इस प्रकार अनन्त महिमामय श्रीराम मंत्रराज

विशेषतः मोक्षप्रद है इसी वास्ते इसको महामंत्र तथा मंत्र राज भी कहते हैं। अगस्त्य संहिता में महर्षिजी ने तो यहां तक कहा है कि—

राममन्त्र विहीनस्य पापिष्ठस्य दुरात्मनः।
शुनो विष्टा समंचान्नं जलञ्च मदिरा समम् ॥

जो श्रीराम मन्त्र से विहीन है उस पापी दुरात्मा के घरका अन्न श्वान विष्टाके समान अग्राह्य है तथा उसके हाथक जल मदिरावत् गर्हित है।

श्रीराममंत्र की महिमा अपरम्पार है, शेष, शारदा शङ्कर तथा वेद पुराण गान करते-करते थक गये परन्तु आजतक इसकी महिमा का पार नही पाये हैं। यदि पृथिवीको पत्र बनायी जाय, समुद्रको स्याही तथा सुमेरु को कलम तथा शारदासे लेकर समस्त देव नर नाग किन्नर लिखें तो भी अनन्तानन्त कल्पों तक भी इसकी असीम महिमाका पार नही पा सकते। तो फिर मैं इस छोटेसे पुस्तकमें कहां तक लिख पाऊंगा परन्तु विज्ञ पुरुषों को इशारा ही काफी होता है, शास्त्रों के थोड़ेसे बचनों द्वारा ही सज्जन गुणग्राही मनुष्य श्रीराममन्त्र की अपार शक्तिका दर्शन कर सकेगें। उनके सुकुमार हृदय पटल में अवश्य ही श्रीराम मन्त्रकी महिमामयी मूर्तिका दिव्य दर्शन, दिव्य चित्र अङ्कित होगा।

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इह चाव्याप-
कानां मध्येऽति श्रेष्ठो व्यापकः स श्रुतिमुनि
सुमतः शिष्ट मुख्यै र्गृहीत । नित्यानामाश्रयोऽयं
परित उरुशुभो नाममन्त्र प्रधानं, प्राप्यश्च प्राप-
कोऽपि प्रचुरतर गुणज्ञानशक्त्यादिकानाम् ॥

श्रीराममन्त्र व्यापक मन्त्र तथा अव्यापक समस्त भगवन् मन्त्रों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। श्रुतियों तथा मुनिजनों करके परमाहत है। शिष्ट सज्जनों से परिगृहीत है व्यापक है। श्रीहनुमदादिक नित्यमुक्तों का आश्रय है। सबतरह से अत्यन्त कल्याण प्रद है। प्रधान है; प्राप्य है, गुण, ज्ञान, शक्ति, आदिका प्रदायक है, यह समस्त मन्त्रों में परम श्रेष्ठ है।

संजाप्यस्तारकाख्यो मनुवर इहतैर्वन्हि बीजं यदादौ।
रामोङे प्रत्ययान्तो रसमितशुभदः स्वक्षरः स्यान्नमोन्तः॥

इस प्रकार जीवों को शीघ्र समस्त फलदायक है तथा अत्यन्त श्रेष्ठ वेद प्रतिपादित मन्त्रशिरोमणि, महा-मन्त्र श्रीराममन्त्र है वन्हि बीज 'रां, जिसके आदिमें है ङे, प्रत्यायान्त रामाय, यह पद जिस के मध्य में है नमः, यह जिसके अन्तमें है, मोक्षप्रद छ अक्षर जिसमें विद्यमान हैं ऐसा श्रीरामतारक मन्त्र का मोक्षाभिलाषियों को प्रति दिन जप करना चाहिये, श्रीशिव संहिताका बचन है कि—

एवं ज्ञात्वा जपेन्मन्त्रं षट्सहस्रं दिने दिने ।
अष्टोत्तर सहस्रं वा त्रिशतं वाथ शक्तितः ॥
षट् सहस्रं सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव वा ।
जप्तव्यो मंत्रिणां मंत्रो नोचेत्प्राप्नोत्यधोगतिम् ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र जी महाराज के परम प्रवल मन्त्र के महत्वका ज्ञान प्राप्त करके, श्रीगुरु महाराज द्वारा मन्त्र मन्त्रार्थ से परिज्ञात होकर नित्य छ हजार इस मन्त्रका जप करे । छः हजार न बन सके तो तीन हजार, या एक हजार, या पांच सौ, या तीन सौ, अथवा कमसे-कम एक सौ (एक अष्टोत्तरी माला) तो अवश्य राममन्त्र जपे । यदि इतना जप भी न करे तो वह प्रतिदिन क्षीण पुण्य होता जाता है । बुद्धि भ्रष्ट मलीन होती जाती है अन्तमे अनेकों प्रकारके विषयोंमे फंसकर अधोगतिको प्राप्त करता है ।

आज काल हमारे महात्मागण अपने शिष्यों को मंत्र तो दे देते हैं परंतु आगे कुछ भी ख्याल नहीं रखते हैं । याद रहे ! शिष्य जिस रोज शरणागत होता है उस रोज अपने जीवन की डोरी श्रीगुरु महाराज के हाथ सौंप देता है । उसे सुधारना बिगाड़ना तारना या डुबाना यह गुरुदेव के हाथ है, यदि शिष्य धर्माचरणोंका परित्याग करे या कुमार्ग पर चले तो श्रीगुरुदेवका कर्तव्य है (फरज है) कि वह शिष्यको सीधे मार्ग पर लावे । उसे अपने उपदेश द्वारा सन्मार्ग प्रदर्शित

करे, जब-जब शिष्य सांसारिक विषयों के वशीभूत हो तब २ उसे उन विषयों से निवृत्त करे तथा निवृत्ति पथमें चलावे।

परन्तु आज न गुरु महाराज अपने शिष्योंपर धार्मिक शासन रखते हैं और न शिष्य उनकी अन्यान्य बातोंको उतनी आदर दृष्टि से देखता है। इसीसे आज यह सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी बैष्णव समाज प्रायः अवनत हो रहा है। कितने महात्मा लोग अपने गृहस्थ शिष्योंको तो केवल दीक्षाके समयही मन्त्रादिक संस्कार दे देते हैं बाद उसको मन्त्र याद है या नहीं? कण्ठी रखता है या नहीं? तिलक लगाता है या नहीं? भगवत्पूजन स्मरण कीर्तन करता है या नहीं? इसकी कुछ भी परवाह नहीं रखते। इसी लिये कितने गृहस्थ बैष्णव तिलक माला से सर्वथा बञ्चित रहते हैं तथा मन्त्र भी प्रायः विस्मृत कर देते हैं। यह है धार्मिक शासन का अभाव। भला जो हमारा शिष्य हुआ हम जो आज्ञा दें वह करनेको जो सर्वदा तैयार रहता है, हमारे उपदेश से वह अपना कल्याण समझता है वह हमारा शिष्य तिलक कण्ठीसे शून्य रहे और हम आंखोंसे देखें यह कहां तक न्याय सङ्गत है? परन्तु किया क्या जाय, गुरु महाराज हो उसे इन कार्योंको करनेके लिये इन संस्कारों का आजन्म पालन करनेको आदेश नहीं देते हैं, वे इस कर्तव्य पालन करनेके लिये कठोर शासन नहीं रखते हैं, तब वह तो बिचारा संसार में फंसा हुआ जीव है ही, अतः श्रीवैष्णवाचार्य्यों का, श्रीवैष्णव महात्माओं

का यह पवित्र कर्तव्य है कि अपने गृहस्थ विरक्त दोनों प्रकार के शिष्यवर्गों से इन नियमों का पञ्च संस्कारों का आजन्म पूर्ण तरह पालन करावें, और गृहस्थ विरक्त शिष्यों का भी यह आवश्यकीय कार्य है कि वे वेद शास्त्र पुराण श्रीगुरु महाराज, तथा सन्त महात्माओं के आदेशों का आदर करके इसका सब प्रकार से सदा पालन करें और निर्भीक होकर अपने अड़ोसी पड़ोसी, इष्ट, मित्र तथा पारिवारिक लोगों को भी मीठे मधुरे शब्दों में वैष्णव धर्मके अमृतमय अमर रहस्यों को समझा कर अपने समान ही अनन्य श्रीवैष्णव भक्त बनावें। कितने गृहस्थ वैष्णव लोकभय से कण्ठी तथा तिलक धारण नहीं करते हैं परन्तु यह परम अनुचित कार्य है। अरे भाई! तुम्हें झूठ बोलने में शर्म नहीं आती, तुम्हें लड़ाई झगड़ा करने में लाज नहीं लगती, पराई पत्नीकी लाज हरण करके उसे पति विमुख बनाने में भय या सङ्कोच नहीं लगता, गरीबोंका गला घोंटनेमें तुम लज्जा को तिलाञ्जलि देते हो रण्डियों का नाच देखने में तुम्हारी इज्जत नहीं जाती, गांजा, भांग, तमाखू, बीड़ी, सिगरेट, चिरुट, अफीम, मद्य, वा इत्यादिक दुर्व्यसन तुम्हें लज्जित नहीं करते तो फिर भगवत्-प्राप्ति, महात्माओं के शुभ दर्शन की प्राप्ति, तथा भक्ति. प्रेम, श्रद्धा, इत्यादिक शुभ सुमनों को सञ्चित करवाने वाले भगवान् के परम प्रिय कण्ठी, तिलक, धनुर्बाण मुद्रादिक भगवदीय चिन्हों को धारण करने में तुम्हें लाज क्यों आती है।

भगवत् कीर्तन स्मरण, पूजन तथा उत्सव करने में तुम्हें सङ्कोच क्यों लगता है ? जिन भगवच्चिन्हों को धारण करने मात्रसे ही तुम्हें वैष्णव कहलाने का शुभ अवसर प्राप्त होता है, जिसके धारण करने से "वैष्णवाः विष्णुवत् पूज्याः" इस वचनानुसार भगवत्समानता को उनके दिव्य धामको तथा भगवल्लोकके अक्षय्य अनन्त तथा अखूट ऐश्वर्य्यको प्राप्त कर सकते हो, उन भगवदीय चिन्हों को धारण करने में भय क्यों लगता है ? लोग कहेंगे भगत हो गया, तो आपका क्या बिगड़ गया, भक्त होने के वास्ते तो ब्रह्मादिक देवता तरसते रहते हैं, इस लिये लोक भय, लोक लज्जाका सर्बथा परित्याग करदो। डरना हो तो एक परमात्मा से डरो। लज्जा रखनी हो तो भगवान् से तथा भगवद्भक्तों से रखो तो तुम्हारा हित भी होगा आगे सुख भी पाओगे और आज आपकी मश-करियाँ करने वाले ही आपके अनुयायी बन जायगे। अतः प्रभुको भय रखकर दुष्कर्मों का आत्यन्तिक परित्याग कर परम उदार श्रीवैष्णव धर्म भगवद्धर्म का आश्रय ग्रहण करो।

प्रत्येक विज्ञ पुरुषों से यह बात छिपी नहीं है कि दूसरे देश वाले, दूसरे धर्म वाले, जिनका चाल चलन हम लोगों से (भारतवर्षीय प्रजा से) एक दम विभिन्न है वे लोग भी हमारे ही देशमें, हमारे ही सामने, अपने धर्मका कितनी तेजीसे प्रचार करते हैं। उनके प्रचार कार्यको देखकर आश्चर्य चकित

हो जाना पड़ता है। इन थोड़े ही वर्षों में भारत वर्षकी इस परम पवित्र आर्य भूमिके कोने-कोने में आज ईशाई धर्म व्याप्त हो रहा है हमारे हजारों भाई प्रतिवर्ष ईशाई बन रहे हैं। इसका क्या कारण है ? क्यों ऐसा होता है ? विचार करो तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि उन लोगों के निर्भीक प्रचार से। क्या उन लोगों ने प्रथमावस्था में दुःखों का सामना नहीं किया था ? क्या उन्हें लोग अनादर की दृष्टि से अवलोकन नहीं करते थे ? क्या उन्होंने अनेकों स्थलों पर अपमान सहन नहीं किये हैं ? यह सब कुछ हुआ है और आज भी होता है, परन्तु वे लोग इन सबकी उपेक्षा करके अपने धर्म प्रचार में तन्मय हैं तो आज उनकी दिन प्रतिदिन वृद्धि ही हो रही है। संसार में भगवान् को मानने वाले धर्ममें श्रद्धा रखने वाले, तथा वेद पुराणों को आदर की दृष्टिसे प्रेमभरी नजर से देखने वाले; आज भी कम नहीं हैं परन्तु कमी है श्रीवैष्णव धर्मके प्रचारकों की, निर्भीक उपदेशकों की, यदि आज थोड़े ही उपदेशक भारतवर्षमें निकल पड़ें और लोभ लालच त्याग कर निर्भय रूपसे उपदेश करें तो आज भी यह भारत एक बार फिर वैष्णव भक्तमय हो जाय। इस वास्ते प्रत्येक श्रीवैष्णवों को इस अपने प्राण प्रिय धर्मके प्रचार के वास्ते तन, मन, धनसे सर्वदा सर्वस्थलों पर उद्यत रहना चाहिये। तथा इसके आदर्श चिन्हों को प्रति दिन परम श्रद्धा से धारण करने चाहिए, जब हमही खुद अपनी धार्मिक

प्रथाओं की उपेक्षा करेंगे तो हमारी बात कौन मानेगा ? हमारी बात मानकर इन चिह्नोंको धारण करनेको कौन तत्पर होगा ? अतः लोकलाज त्याग कर इन संस्कारों का पूर्णादरसे पालन करना उचित है।

कितने सज्जन प्रायः यह प्रश्न किया करते हैं कि शैव शाक्त मन्त्रों को तथा अन्य श्रीवैष्णव मन्त्रोंको ग्रहण करनेके बाद श्रीराममन्त्र लेना चाहिये अथवा नहीं ?

इसका उत्तर मैं इतनाही देता हूं कि आप लोगोंने आगे के प्रसङ्ग को यदि ध्यान पूर्वक पढ़ा होगा तो विदित हो गया होगा कि श्रीराममन्त्रराजका कितना प्रचण्ड प्रताप है। श्रीराममन्त्र समस्त मन्त्रों का राजा है, अन्य साधारण मन्त्र प्रजावत् हैं, राजा के ही प्रताप से वे भी अपना शासन जमाये हुए हैं, यह तो कायदा है कि साधारण मनुष्यों का सहारा लेने वाले को यदि प्रसङ्गवश राजाका सहारा मिलता हो तो वह अवश्य ही अपना भाग्य समझता हुआ उसको आदर पूर्वक अङ्गीकार करता है। यही बात यहां पर भी हो सकती है क्योंकि राममन्त्र राजा है यदि गुरु महाराज की दया से उनका सहारा प्राप्त होता हो तो हरेक सद्बुद्धि सम्पन्न मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि बिना शङ्का सङ्कोच श्रीराममन्त्र की शरणागति को आश्रय ग्रहण करना चाहिये। हां, राजाके आश्रय में संरक्षित मनुष्य को यदि अन्य मनुष्य अपने वश

में करना चाहे तो वह अवश्य ही दण्डनीय और अपराधी होता है। वैसे ही श्रीराममन्त्र की छत्र छाया में आश्रित मनुष्य को यदि कोई दूसरे मन्त्र के आधीन करना चाहे तो वह अवश्य ही अपराधी होता है और गृहीता मनुष्य भी नरकगामी होता है। इस पर शास्त्रीय प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। यथा—

रामसन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा गृह्णन्त्यन्यन्तु ये पुनः।
नरकान्ननिवर्तन्ते यावच्चन्द्र दिवाकरौ॥
राममन्त्रं समादाय योऽन्य मन्त्र समिच्छति।
गृहीता प्राप्नुयात्पापं दाता च नरके व्रजेत्॥

—भुशुण्डि रामायणे लोमश वचनम्।

श्रीवैष्णव गुरु द्वारा श्रीराममन्त्रराजको प्राप्त करके जो मनुष्य अन्य मन्त्रों को ग्रहण करते हैं तो वे जब तक चन्द्र और सूर्य इस भूमण्डल पर प्रकाशित होते हैं तब तक नारकी दुःखों के भोक्ता बनते हैं, तथा श्रीराममन्त्र को ग्रहण करके जो दूसरे मन्त्रों को कल्याणकारी तथा इससे श्रेष्ठ मानकर ग्रहण करता है, वह गृहीता पाप भागी होता है। तथा दाता नरकगामी होता है।

श्रीनारद पञ्चरात्रोक्त सङ्कर्षण संहिता का वचन भी मिलता है कि—

लब्ध्वा षडक्षरं मंत्रं रामस्य परमात्मनः ।
मंत्रान्तरान्प्रयत्नेन वर्जयेन्मंत्र तत्ववित् ॥

परात्परतम प्रभु श्रीरामजी के षडक्षर मन्त्रराज को प्राप्त करने के बाद मनुष्य यदि दूसरे मन्त्रों का ग्रहण करने की कामना भी करता है तो वह अपराधी नरक को जाता है। अतः दूसरे मन्त्रों का प्रयत्नतः परित्याग करना उचित है।

गृहीत्वा वैष्णवात्सम्यङ् मंत्रराजं षडक्षरम् ।
अन्य मंत्रं जिघृक्षेच्चेद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
-पुष्कर संहितायाम् ।

इस प्रकार श्रीराममन्त्र ग्रहण करने के बाद अन्य मन्त्रों को ग्रहण न करना चाहिये यह शास्त्रीय मत है अतः यह सिद्ध है इसी सुवर्ण सिद्धान्त को विचार करके ही श्रीअवध के प्रसिद्ध महात्मा श्रीरसरङ्गमणिजी ने लिखा है कि—

"राममंत्र वर पाय पुनि, आन मंत्र जे लेहिं ।
काँच किरिच गहि ते अबुध, चिंतामणि तजि देहिं ॥
आन मंत्र तजि जे गहत, राममंत्र शिरताज ।
सिंधु फेन तजि ते चढ़े, जनु रसरंग जहाज ॥,,
-श्रीरसरङ्गविलास ।

अन्य मन्त्रों को परित्याग करके श्रीवैष्णव मन्त्र ग्रहण करना चाहिये इस मत की पुष्टि करने वाला पद्मपुराण उत्तरखण्ड में बचन है कि–

अवैष्णवोपदिष्टं चेत्पूर्वं मंत्रं परित्यजेत् ।
पुनश्च विधिना सम्यक् वैष्णात्प्राप्नुयान्मनुम् ॥

यदि अवैष्णवोपदिष्ट अन्य मन्त्र ग्रहण किया हो तो भी उस मंत्र का परित्याग करके विधिपूर्वक श्रीवैष्णव गुरु द्वारा पुनः श्रीवैष्णव मंत्र ग्रहण करे।

इस तरह अनेकों शास्त्रीय वाक्यों को अच्छी तरह मनन करने पर विज्ञ जनों का पवित्र मन अन्त में इसी निर्णय पर आता है कि यदि श्रीराममंत्र प्राप्त न भया हो तो अन्य मंत्रों का परित्याग करके श्रीराममंत्र ग्रहण कर लेना चाहिये। श्रद्धा और विश्वास की आवश्यकता है यदि यह सामग्री हमारे पास में है तो श्रीराममन्त्रराज का प्रताप स्वयः हमारे हृदय में उदित होगा, और हमारे अज्ञान तिमिर को ध्वस्त कर डालेगा।

संक्षिप्त श्रीराममन्त्रार्थ।

"रां रामाय नमः" यही मूल मन्त्र है। इस मन्त्रराज में तीन पद हैं। प्रथम 'रां, द्वितीय 'रामाय' तृतीय 'नमः'। इस मन्त्ररत्न में छ अक्षर हैं, रां१ रा२ मा३ य४ न५ मः६।

अर्थ करते समय इस मन्त्र के समस्त अक्षरों के भिन्न भिन्न विभाग किये जाते हैं यथा- र+अ÷म्=रां रा÷आम=राम । राम÷आय=रामाय । नमः अथवा न÷मः ।

'रां इस मन्त्र बीजके आगे, चतुर्थी विभक्ति का लोप हो गया है परन्तु अर्थ करतें समय उसका ग्रहण किया जाता है। 'रकारार्थो रामः, रकार श्रीरामजी का वाचक है। अतः रकार का अर्थ हुआ 'श्रीराम, । चतुर्थी विभक्ति का अर्थ होता है वास्ते चतुर्थ्यन्त रां बीज का अर्थ होता है 'श्रीराम जी के लिए'। रां में अ है इसका अर्थ होता है 'एव, । एव शब्द निश्चयार्थक है एव का अर्थ होता है ही। 'रां, में जो 'म्' है उसको "मकारार्थो जीवः,, जीव अर्थ होता है। इस प्रकार 'रां, इसका अर्थ हुआ ' जीव श्रीरामजी के वास्ते ही है,, ।

'रीङ्-क्षये, 'राज्-दीप्तौ, और 'रा दाने' इन तीन धातुओं से 'रा, शब्द बनता है । जब रीङ् धातु से 'रा' बनाया जाता है और उसके साथ नञ् समास करके "नञ्,, का लोप कर दिया जाता है तब लुप्त 'नञ् के सहित 'रा, शब्द का अर्थ होता है "किसी भी समय नाश न होने वाला, ।

जब प्रकाशार्थक 'राज्' धातु से 'रा, बनाया जाता है तब उसका अर्थ होता है अनन्त दिव्य गुण और अनन्त

दिव्य बिभूषणों से सर्वदा देदीप्यमान परम दिव्य तेज सम्पन्न।

उसी प्रकार जब 'रा-दाने, धातु से 'रा' बनता है तब उसका अर्थ होता है' अनन्त कल्याण, असीम सुख, और अनन्त ऐश्वर्य प्रदायक'।

'रा' के आगे 'आम्, वह 'अम्, धातु से बनता है। उसका अर्थ होता है 'प्राप्य, 'प्रापक, और 'आधार'। 'राम, के आगे चतुर्थी बिभक्ति है आय। उसका अर्थ होता है "भगवत्कैङ्कर्य"। रामाय के आगे नमः पद है। उसका अर्थ होता है 'उपाय'।

उपरोक्त प्रकार से मन्त्र का अर्थ हुआ—

"जीव श्रीरामजी के लिये ही है। तथा अविनाशी, नित्य प्रकाशमान, अनन्त कल्याण और अनन्त ऐश्वर्य प्रदाता प्राप्य, प्रापक, और निखिल जगदाधार श्रीरामजी का कैङ्कर्य ही इसका एक मात्र उपाय है,,।

नमः शब्द दो प्रकार का है। एक अखण्ड और एक सखण्ड। अखण्ड नमः पद की योजना के साथ श्रीराम मन्त्रार्थ ऊपर हो चुका है। सखण्ड नमः पद की योजना के साथ श्रीराममन्त्रार्थ इस प्रकार होता है।

मः यह हलन्त 'म्' शब्द की षष्ठी का रूप है उसका अर्थ होता है 'म् का'. 'म, अर्थात् जीव 'जीवका, और

'म, अर्थ है नहीं। इसका स्पष्ट अर्थ हुआ 'जीवका नहीं'। इस 'न' और म' की मूलमन्त्र के तीनों पदों के साथ योजना की जाती है। यथा—

रां नमः। रामाय नमः। नमो नमः।

रां नमः का अर्थ होता है कि- यह जीव केवल श्रीरामजी के वास्ते ही है। जीवों के लिये नही। अर्थात् जीव जीव के लिये भी नहीं है परन्तु जीव भगवान् के लिये ही है। इससे जीव को यह सुष्ठुरूपेण बोध हो जाता है कि मैं भगवान् का शेष हूं, भगवान् के वास्ते हूं। मुझपर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है। मैं तो सर्वथा भगवत्परतन्त्र हूं।

'रामायनमः' का अर्थ होता है। "जीव को भगवत्कैङ्कर्य ही करना चाहिये जीवका नहीं' इससे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि जीव स्वार्थ के लिये अथवा अन्य किसी जीव के लिये देवतान्तर के लिये कैङ्कर्य (सेवा) न करे परन्तु केवल भगवान् के वास्ते ही करे सर्व कार्य श्रीराम प्रीत्यर्थ ही करे। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि 'सद्गुरु, पिता, पूज्य, वृद्ध, गरीब' दीन तथा वैष्णवादिकों की सेवा न करें। करें तो सबकी सेवा, परन्तु भगवान् के वास्ते करे। यही समझता रहे कि मैं इनकी सेवा करूंगा तो प्रभु प्रसन्न होंगे। प्रभु की प्रसन्नताके लिये ही यह मेरी सेवा है। मैं इनको प्रसन्न करनेको सेवा नही करता हूं अर्थात् इनके लिये नहीं करता हूं। परन्तु प्रभुको प्रसन्न करनेके

वास्ते करता हूं। अर्थात् प्रभुके लिये करता हूं। नमो-नमः। इस पदका अर्थ होता है कि जीवको अन्य कोई भी उपाय नहीं हैं। उपाय उपेय प्रभु श्रीरामजी ही हैं। इससे यह ज्ञान होता है कि श्रीरघुनाथजीके अतिरिक्त अन्य कोई भी गति नहीं है। इसप्रकार समुच्चय अर्थ होता है—

'जीव केवल सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामजीके लिये है। अपने अथवा अन्य जीवोंके अथवा देवतान्तरोंके लिये नहीं है। इसका भगवत्कैङ्कर्य ही सुगम और सरल उपाय है। अन्य उपायान्तर नहीं है जीवको भगवान्‌का ही कैङ्कर्य भगवान्‌के लिये ही करना चाहिये। जीवको इसके सिवाय तीनों लोकमें अन्य कोई भी साधन नहीं है। इसके साध्य साधन सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी ही हैं।

मनुष्यको धार्मिकक्षेत्रमें चलते समय जितने उपद्रव सामने आते हैं उन सबका निवारण श्रीराममन्त्रार्थ समझकर समय पर अनुसन्धान करने से हो जाता है यथा—

देहासक्तात्मबुद्धिर्यदि भवति पदं-
साधुविद्यात्तृतीयम्।
स्वातन्त्र्यान्धो यदि स्यात्-
प्रथममितरशेषधीश्चेद्द्वितीयम्।

आत्मत्राणोन्मुखश्चेन्नम इति-
पदं बान्धवाभासलोलः ।
शब्दं रामाभिधेयं विषय चपलधी-
श्चेच्चतुर्थी प्रपन्नः ॥

'जीव जिस समय पाञ्चभौतिक देहमें आसक्त होकर देहको आत्मा मानने लगे तब उसको श्रीराममन्त्रके तृतीय पद ' म , के अर्थ का अनुसन्धान करना चाहिये क्योंकि 'म, शब्द 'मन-ज्ञाने, मदी-हर्षे, तथा मसी-परिमाणे , इन तीन धातुओंसे निष्पन्न होताहै उसका स्पष्टार्थ होता है कि 'जीव ज्ञान गुणवान् आनन्द स्वरूप तथा अणुपरिमाण वाला है । इस प्रकारसे निज स्वरूपका यथार्थ ज्ञान जब जीवको प्राप्त होगा तब उसकी देहासक्ति स्वतः छूट जायगी ।

यह जीव जब स्वतन्त्रता के मद से मतवाला हो जाय, अपने को परम स्वतन्त्र समझ कर अन्धवत हो जाय तब उसे श्रीराममन्त्रराजके प्रथम पद ' रां , के अर्थका अनुसन्धान करना चाहिये । क्योंकि श्रीरामजीही सर्व जगत के ईश्वर हैं और मै उनके परतन्त्र हूं उनके हाथका खिलौना हूं। मैं खुद अपने लिये भी नहीं हूं । जब यह ज्ञात हो जायगा तब उसकी स्वतन्त्रतान्धता स्वतः निवृत्त हो जायगी, और अपने को भगवदाधीन भगवदीय समझने लगेगा ।

यदि इस जीवको यह भ्रम हो कि मैं प्रभु श्रीरामके नहीं प्रत्युत अन्य देवतान्तरोंके आधीन हूं । अन्य जीव या

देवताओं का सेवक हूं। तब उसे श्रीमन्त्रराजके द्वितीय पद के अर्थका अनुसन्धान करना चाहिये। इससे यह बोध होगा कि जीव तो केवल प्रभुके लिये हीहै अपने लिये या अन्य जीवोंके लिये या अन्य देवतान्तरोंके लिये, तो है ही नही। जब ऐसा ज्ञान होगा तब अन्योंकी पराधीनता छूट जायगी और अपनेको सर्व तरह भगवान का ही समझने लगेगा —

यदि जीवको अपने उद्धार के लिये चिन्ता हो और भ्रम वश अन्य साधनोंमे फंस जाय तो उसे श्री मन्त्रराजके नमः इस पदके अर्थका अनुसन्धान करना चाहिये। इससे उसे साफ समझ में आ जायगा कि „ शरणागतवत्सल श्रीराघवको छोड़कर मेरा अन्य कोई भी साध्य या साधन नही है वही दीनबन्धु मेरे उपाय, उपेय, साध्य और साधन हैं।„

यदि इस जीवको पुत्र कलत्रादिका मोह घेरले तब उसे श्रीराममन्त्रस्थ 'राम, पदके अर्थका अनुसन्धान करना चाहिये, इससे उसे यह ज्ञान हो जायगा कि 'अनन्त सुख 'अनन्त कल्याण और अनन्त ऐश्वर्य्य प्रदाता तो केवल श्रीरामजी ही हैं। इस जगत् के नाशवन्त पुत्र, कलत्र, मित्र, मेरा क्या कल्याण करेंगे? और मुझे क्या सुख देंगे?।

यदि जीव को विषय बिलासिनी बुद्धि होजाय तो उसे श्रीराममन्त्रस्थ 'आय' इस चतुर्थी विभक्ति के अर्थ का अनुसन्धान करना परमावश्यक है। इससे यह स्पष्ट समझ जायगा कि सर्वेश्वर प्रभु के लिये ही।

और मेरी तमाम चीज़ें हैं, मैं तो प्रभु का भोग्य हूं। प्रभु भोक्ता है। और मेरे तो सर्व सुख प्रभु के लिये ही हैं। प्रभु सेवा में ही मेरा अनन्त सुख है। विषयों में तो विष भरा है। अमृतानन्द स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी के श्रीमुखचन्द्र में अमृत भरा है। अतः मैं तो प्रभु दर्शन द्वारा ही अमृतत्व प्राप्त कर सकता हूं। मेरे सुखागार प्रभु श्रीराम ही हैं। इस प्रकार मंत्रार्थ भी शिष्य को दिया जाता है। क्योंकि —

मन्त्रदाता न गुरुर्न च मन्त्रार्थ वाचकः।
मन्त्र मन्त्रार्थ यो दद्यात् गुरुरित्यभिधीयते॥

मन्त्र प्रकरणमें द्वयमन्त्र तथा चरम मन्त्रकी भी आवश्यकता प्रतीत होती है' प्रत्येक भक्तों को, श्रीवैष्णवों को इन दोनों मन्त्रों के सहित श्रीराममन्त्र प्राप्त करना चाहिये। इन मन्त्रों की महिमा का वर्णन भी प्रचुरतर पाया जाता है। श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजीने भी इन तीनों मन्त्रों का जप करनेके लिये इस तरह आदेश किया है —

संजाप्यस्तारकाख्यो मनुवर-
इह तैर्वह्निबीजं षडाद्यो।
रामोङे प्रत्ययान्तो रसमित-
शुभदः स्वक्षरःस्यान्नमोऽन्तः॥

मन्त्रो रामद्वयाख्यः सकृदिति-
चरम प्रान्वितो गुह्यगुह्यो ।
भूताद्युत्संख्यवर्णः सुकृति-
भिरनिशं मोक्षकामैर्निषेव्यम् ॥

जिसके आदिमें 'रां' यह वह्नि वीज है' ङे प्रत्ययान्त राम शब्दकी चतुर्थी विभक्ति का एक वचन 'रामाय, जिसके मध्यमें है तथा नमः शब्द जिसके अन्तमें है ऐसा तारक नामक श्रीराममन्त्रराज समस्त मुमुक्षुओं को जपना चाहिये । तथा सुकृती सज्जनों को २५ अक्षरों वाला अत्यन्त गोपनीय द्वय मन्त्र तथा " सकृदेव प्रपन्नाय " यह जिसके आदि में है ऐसा चरम मन्त्रका भी मोक्षाभिलाषियों को प्रतिदिन पूर्ण प्रेम सहित जप करना चाहिये ।

प्रथमं श्रीमदिति, ततो रामचन्द्रचरणाविति ब्रूयात् अनन्तरं शरणमितिपदं पश्चात्प्रपद्य इति बदेत्, पुनश्च श्रीमते इति, अथ रामचन्द्राय इति, तदग्रे नम इति, यो दाशरथेद्वयाख्यं मन्त्राणां प्रवरं मन्त्ररत्नमधीते स सर्वान् कामानश्नुते, ब्रह्मेन सह मोदते ।

विश्वम्भरोपनिषद् ।

'प्रथम 'श्रीमत्, पदका उच्चारण करे, बाद 'राम चन्द्र चरणौ, पदका उच्चारण करे, पश्चात् 'शरणं, पदका

उच्चारण करे, उसके बाद 'प्रपद्ये, इस पदका पाठ करे पुनः 'श्रीमते, बाद 'रामचन्द्राय, उनके बाद नमः, इस पदका पाठ करे इस प्रकार (श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः) इस पञ्चविंशाक्षर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वय मन्त्रका जो जप करता है दशरथतनय श्रीरामजीके इस मन्त्र रत्नका जो नित्य अध्ययन करता है वह समस्त इच्छित पदार्थोंको प्राप्त करता है। वह परमात्मा परब्रह्म श्रीरामजीके साथ आनन्द लूटता है।

पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रः पदैः षडभिः समन्वितः।
वाक्यद्वय परं मन्त्र ज्ञेयं रत्नमनुत्तमम्॥

हारीतस्मृति।

पचीस अक्षरों वाला छ पद वाला, दो वाक्य वाला भगवान् का जो द्वयमन्त्र उसे मन्त्ररत्न समझो।

द्वयाख्यं रामचन्द्रस्य मन्त्ररत्नमनुत्तमम्।
पञ्चविंशाक्षरं विद्वान् स याति परमांगतिं॥

स्कन्द पुराण।

द्वयमन्त्र जिसका नाम है, मन्त्रों में रत्न है, पचीस वर्णों वाला है उसको यथार्थ रीत्या समझ लेने से मनुष्य परमागतिको सहज में प्राप्त करता है।

मूर्खो वा धर्मशीलो निन्दितो वाप्यनिन्दितः ।
द्वयोच्चारण मात्रेण नरः शीघ्रं स गच्छति ॥
संसारार्णव मग्नानां सद्यः संसार तारणम् ।
द्वयमेकं तु विप्रेन्द्र ! नास्त्यस्य सदृशं भुवि ॥

पद्म पुराण ।

"मूर्ख हो या विद्वान्, धर्मशील हो या अधर्मी, निन्दित हो वा अनिन्दित, परन्तु सब तरह के मनुष्य द्वयमन्त्र के उच्चारण मात्र से ही उस गतिको जाते हैं। संसार सागर में डूबते हुए प्राणियों को शीघ्रता के साथ तारने वाला केवल द्वयमन्त्र ही है। हे विप्रेन्द्र ! ज्यादा बातें गढ़कर कहने से क्या मतलब ? यही समझ जाओ कि यह सर्व श्रेष्ठ है इसके समानता वाला संसार में कोई है ही नहीं ।

इस प्रकार द्वय मन्त्रके महत्व परक वाक्य भी अनेकों हैं और श्रीवैष्णवों को श्रीराममन्त्र के साथ द्वयमन्त्र भी प्राप्त करना चाहिये और चरम मन्त्र भी प्राप्त करना परमावश्यक है ।

प्रोक्ता वत्सक ! मन्त्ररत्न विवृतिः
सन्मानसाभीष्टदं ।
सद्वेधं सकृदित्यवेहि चरमं
... ॥

रामीयं हि तदीय मन्त्रनिरतै-
स्संबोधनीयं परं ।
द्वात्रिंशत्प्रमिताक्षरं मनुपदं-
द्वयर्द्धं जगद्विश्रुतम् ॥

हे प्रियवत्स ! मन्त्ररत्न का विवरण आगे हो चुका, अब सत्पुरुषों के मनोरथों को सफल बनाने वाला, तथा विज्ञों से आद्दत, निर्णीत वाक्यार्थ वाले भगवन्मन्त्रानुरागियों के वास्ते परमज्ञेय, ३२ अक्षर वाले, १४ पद वाले, पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध ऐसे दो अर्धवाले, जगत्प्रसिद्ध निश्चय ही सर्व प्रधान श्रीराम सम्बन्धी "सकृदेव प्रपन्नाय,, इस भगवान् श्रीरघुनाथजीकी दिव्य प्रतिज्ञा का स्मारक मन्त्र को तुम|चरम मन्त्र जानो। और नित्य इसका अनुष्ठान करो।

आजकाल]महात्मागण इन तीनों मन्त्रों का उपदेश प्रायः नहीं देते हैं तथा मन्त्रार्थं भी नहीं बतलाते हैं परन्तु ऐसा न करना चाहिये, ऐसा करने से मन्त्र संस्कार साङ्गोपाङ्ग नहीं समझा जाता है इस वास्तें इसका पूर्ण पालन करना चाहिये। यही बात सब संस्कारों में है, कितने महात्मा शिष्य करते समय धनुर्वाण नहीं देते है; वाद कितने महीनों या वर्षों पर देते है।और वह शिष्य तब तक उसी अधकचरी अवस्था में ही पड़ा रहता है प्रायः गृहस्थ वैष्णव तो इन द्वय तथा चरम मन्त्रों से तथा धनुर्वाण मुद्रा धारण से एक तरह वञ्चित ही

रहते हैं अतः इस प्रमादवशता को निकाल कर दूर करनी चाहिये और शिष्यों को दीक्षाके समय ही विधि विधान सह साङ्गोपाङ्ग पञ्चसंस्कार सम्पन्न करना चाहिए। हम लोग जगत् के व्यवहारिक कार्यों को कितनी दक्षताके साथ सम्हालते हैं त्रुटियां नहीं आने देते हैं और प्रयत्नतः सुचारुरूपेण कार्य सम्पन्न करते हैं तो फिर भगवन्मार्ग के भगवत्कैङ्कर्य्य स्वरूप इस कार्य में हमें आलस्य तथा प्रमाद को स्थान क्यों देना चाहिये ? इसमें तो तत्काल ही समस्त संस्कारों से सम्पन्न करके मुमुक्षु को विशुद्ध श्रीवैष्णव बना देना चाहिए।

सब विधि राम मन्त्र सुख धाम।

गावत याको वेद सुयश नित, वर्णत सकल पुराण।
हरिहर ब्रह्मा प्रतिदिन ध्यावत पावत अति अभिराम॥
सकल जगत् के जीव दुःख से छूटत सुमिरत राम।
ताको मन्त्रराज अति पावन सुन्दर ललित ललाम॥
सर्व मन्त्र शिरताज सलोनो पूरक सब मन काम।
पवन तनय को प्राण पियारो दायक अविचल धाम॥
ऐसो मन्त्ररत्न यह जगमें प्रति दिन जपत सुजान।
ताके पद पङ्कज की सेवा करते देव प्रधान॥
प्रेमनिधि है परम प्रेममय मेरो जीवन प्राण।
तन मन धन सरवस मैं वारौं सुमिरौं आठौ याम॥

नहीं कोई राममन्त्र सम और ।
समरथ प्रबल प्रचण्ड प्रतापी, जारत पाप कठोर ।
स्मरण मात्र या जपते ही ये, करता परम उजोर ॥
खोज खोज हारयो या सम मोहि, मिल्यो न कोई और।
भवसागर से पार उतारत, टारत सङ्कट घोर ॥
ब्रह्मा बिष्णु महेश्वर याको, जपत सदा उठि भोर ।
वेद, पुराण, शास्त्र, निशिवासर, गावत सुयश अथोर ॥
जगके जेते मन्त्र और हैं, देखे सबही टटोर ।
प्रेमनिधि या सम एको ना, कहता बार बहोर ॥

माला संस्कारः ।

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कण्ठलग्ना द्विधाकृती ।
दद्यात्तां क्षण मात्रोऽपि शिष्यो नैव त्यजेत्पुनः ॥

सनत्कुमार संहिता ।

द्विधाकृति (दोलरी) सूक्ष्म सुन्दर तुलसी की माला शिष्यको प्रदान करे, जब शिष्य को गुरुदेव द्वारा दी हुई तुलसीमाला प्राप्त हो उसके बाद वह कदापि किसी काल में तुलसीमाला का त्याग न करें।

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठ सम्भवाम् ।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम् ॥
न जह्यात् तुलसी मालां धात्री मालां विशेषतः ।
महापातक संहन्त्रीं सर्वकाम प्रदायिनीम् ॥

स्कान्दे ।

तुलसी काष्ठ से बनी हुई माला भगवान् को धारण कराकर भगवत्प्रसादीरूप करी उस माला को जो मनुष्य भक्ति पूर्वक धारण करता है उसको पाप नही लगता है। इस वास्तें धात्रीमाला तथा तुलसी माला को विशेष करके कभी न छोड़े यह महापातकों की नाशक है और समस्त मनोकामनायें पूर्णकरने वाली है

तुलस्यलंकृता ये ये तुलसी नाम जापकाः ।
तुलसी वनपाला ये ते त्याज्या दूरतो भटाः ॥

—काशीखण्डे।

यमराज कहते हैं हे भटो ! जो जो तुलसीमाला से अलंकृत हैं तुलसीनाम के जापक हैं तथा तुलसी के बगीचा के पालक हैं वे यहां [नरक में] आने लायक नहीं है अतः ऐसे मनुष्यों को दूर से ही नमस्कार करतें रहना।

यज्ञसूत्रं विना विप्राः वेद हीनाः क्रिया यथा।
सत्य हीनं यथा वाक्यं माला हीना च वैष्णवाः ॥

जैसे यज्ञोपवीत बिना ब्राह्मण अधम है, वेदप्रतिपादित न हो ऐसी क्रियायें जैसे व्यर्थ हैं। सत्य से ओतप्रोत न हो वैसे वाक्य जैसे निष्फल हैं वैसे ही तुलसीमाला बिहीन वैष्णव वैष्णव नही है। इसलिये सर्वदा तुलसीमाला धारण करना चाहियें ।

वैष्णवैः सततं धार्या श्रीतुलसी द्वियष्टिका ।
तां त्यजन् पुरुषो मूढ़ो भ्रष्ट संस्कार एव हि ॥
यस्य कण्ठे न संलग्ना वैष्णवस्य च दुर्मतेः ।
तुलसी राजते सोऽथ नाम मात्रेण वैष्णवः ॥
तस्य स्पृष्टमवन्नादि न ग्राह्यं वैष्णवैः क्वचित् ।
दूरं चाण्डाल वत्त्याज्यो द्विजकर्म वहिष्कृतः ॥

—बाल्मीकि संहिता ।

दोलर वाली [दोहरी] श्रीतुलसी माला श्रीवैष्णवों को सदा सर्वदा धारण करनी चाहिये, उसका परित्याग करने वाला भ्रष्ट संस्कार हो जाता है। जिसके कण्ठ में कण्ठलग्ना द्विधाकृती तुलसी माला नहीं रहती है वह दुर्मति नाम मात्र का ही बैष्णव है यथार्थ में श्रीवैष्णवी संस्कार विहीन है उसके हाथका छुआ अन्न जल उत्तम वैष्णवों को कदापि ग्रहण नहीं करना चाहिये । वह समस्त द्विजातियों के करने योग्य कर्मों से वहिष्कृत है उसका चाण्डाल के समान दूरसे ही परित्याग करना चाहिये ।

मन्त्रं तथैवोपदिशेद्विधानतो मालां वरां तां तुलसी समुद्भवाम् ॥

श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर ।

"इस प्रकार विधान पूर्वक मन्त्रराजका उपदेश करे तथा तुलसी काष्ठ समुद्भवा परम पवित्रा माला प्रदान करे"

श्रीहरिभक्ति विलासे गरुड़पुराण वचनम्—

सन्निवेद्यैवं हरये तुलसी काष्ट सम्भवाम् ।
मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ॥
हरये नार्पयेद्यस्तु तुलसीकाष्ट सम्भवाम् ।
मालां धत्ते स्वयंमूढः स याति नरके ध्रुवम् ॥
तुलसी काष्ट सम्भूतां मालां यो वहते नरः ।
प्रायश्चितं न तस्यास्ति नाशौचन्तस्य विग्रहे ॥

भगवान् श्रीहरि को समर्पण कर लेने के बाद तुलसी काष्ट से बनी हुई माला जो स्वयं धारण करता है, वह भागवतोत्तम है। श्रीहरिको बिना अर्पण किये तुलसी माला जो खुद धारण कर लेता है वह मूढ़ निश्चय ही घोर नरकगामी बनता है। तुलसी काष्ट से बनी हुई माला को जो भाव पूर्वक धारण करता है वह मनुष्य पवित्र है उसको कोई भी प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नही रहती है उसके शरीर में अपवित्रता नही घुसती है वह पवित्र है।

तुलसी काष्ट मालां यो धृत्वा स्नानं समाचरेत् ।
पुष्करे च प्रयागे च स्नातं तेन मुनीश्वर ॥

श्रुति प्रकाशिकोदाहृत स्कन्दवचनम् ।

तुलसीकाष्टमाला को धारण करके जो मनुष्य स्नान करता है उसको पुष्कर प्रयागादिक समस्त तीर्थ स्नान

फल प्राप्त होता है। तत्रैव पाद्म वचनम्—

स्नान कालेतु यस्याङ्गे दृश्यते तुलसी शुभा।
गंगादि सर्व तीर्थेषु स्नातं तेन न संशयः॥

स्नान समयमें जिसके अङ्ग पर परम शुभा तुलसी मालिका दिखलाती है उसने गङ्गादिक समस्त [पवित्र] तीर्थों में स्नान करने का फल पाया। इसमें कोई भी संशय नही है।

तुलसी काष्ट मालां यो धृत्वा भुंक्ते द्विजोत्तमः।
सिथे सिक्थे च लभते वाजिमेध फलं मुने॥

हे मुने! श्रीतुलसीमाला धारण करके जो मनुष्य भोजन करता है उसे एक-एक कौर के एक-एक कण पर सहस्रों अश्वमेधादिक यज्ञ फल प्राप्त होता ही रहता है।

शरीरं दह्यते येषां तुलसी काष्ट वन्हिना।
न तेषां पुनरावृत्ति विष्णुलोकात्कथञ्चन॥
ग्रस्तो यदि महापापैरगम्य गमनादिकैः।
मृतः शुद्धयति दाहेन तुलसीकाष्ट वन्हिना॥
तीर्थं यदि न सम्प्राप्तं स्मृतिर्वा कीर्तनं हरेः।
तुलसी काष्ट दग्धस्य मृतस्य न पुनर्भवः॥
यद्येकं तुलसीकाष्टं काष्टमध्ये भवेत्तदा।
दाहकाले भवेन्मुक्तिः पाप कोटियुतस्य च॥

जन्मकोटि सहस्रैस्तु तोषितो यैर्जनार्दनः।
दह्यन्ते ते जनाः लोके तुलसीकाष्ठ वन्हिना॥
—विष्णुधर्मोत्तरे।

जिन भाग्यवानों का शरीर तुलसीकाष्ठ की अग्निद्वारा जलाया जाता है उन लोगों की श्री विष्णुलोक से फिर कभी पुनरावृत्ति नहीं होती है, उनकी आवागमन पीड़ा छुट जाती है। यदि अगम्य गमनादिक अनन्तानन्त महापापों से संयुक्त हो परन्तु मरते समय उसके शरीर का तुलसीकाष्ठ का अग्नि से दाह होवे तो वह निश्चय ही विशुद्धात्मा हो जाता है। यदि कोई तीर्थादिक न किया हो, जिसको कभी भगच्चरणामृत प्राप्त न भया हो, जिसने कभी भगवत्स्मरण कीर्तन भी न कर पाया हो उसको भी यदि भगवत्प्रिया तुलसी के काष्ठ से जलाया जाय तो वह मृतात्मा भी पुनः इस घोर सङ्कटाकीर्ण संसार में नहीं आता है। जिसकी चिता में एक भी तुलसी काष्ठ रखा गया हो वह यदि अनन्त पाप युक्त हो तो भी अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त करता है। जिन्होंने करोड़ों जन्मों तक भगवदाराधन करके प्रभु को खूब प्रसन्न किये हों उन भाग्यभाजन मनुष्यों को तुलसी काष्ठ द्वारा प्रज्वलित अग्निज्वाला में जलने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैक पाविनी॥

तुलसी सन्निधौ प्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर ।
न तेषां नरकक्लेशः प्रयान्ति परमं पदम् ॥

—अगस्त्यसंहितो ।

त्रिलोकनाथ भगवान् श्रीरामजी को जैसे श्रीजानकी जी प्राणप्रिया हैं वैसे ही तुलसी भी अत्यन्त प्रिय है। तुलसी निखिल जग पाविनी है। हे मुनीश्वर ! अन्तसमय में जो मनुष्य तुलसी के पास में अपने प्राणों को बिसर्जित करते हैं उनको नरक क्लेश नहीं सहन करना पड़ता है वे प्रभु के दिव्य धाम का प्राप्त करते हैं।

गुरुदत्तास्तु या माला कण्ठलग्ना सुसंस्कृता ।
तुलसीकाष्ठ सम्भूता न त्याज्या सा कदाचन ॥
तां त्यक्त्वा तु महामूढ़ो मिथ्याचारी प्रमादतः ।
संस्कारं खण्डितं कृत्वा गुरुद्रोही भवेन्नरः ॥
यथा यज्ञोपवीतं त न त्याज्यं ब्राह्मणैः क्षणे ।
वैष्णवेन तथा माला न त्याज्या क्षणमेव च ॥

सनत्कुमार संहिता, चतुर्थाध्याय ।

श्रीगुरु प्रदत्ता, कण्ठलग्ना, विधि विधान सह, श्रीतुलसी मालिका को धारण करनी चाहिये, बाद उसका कभी त्याग करे वह इस एक संस्कार का खण्डन करके गुरुद्रोह के महान् पातक का भागी होता है, जैसे ब्राह्मणों को एक क्षण मात्र भी

यज्ञोपवीत का त्याग नहीं करना चाहिये वैसे ही श्रीवैष्णवों को तुलसीमालाका कभी त्याग न करना चाहिये।

तुलसी मालिका नित्य धारणीया प्रयत्नतः।
धारयेच्च विशेषेण जप होमार्चनादिषु ॥
शाण्डिल्य स्मृति।

प्रयत्न पूर्वक तुलसी मालाको सर्वदा धारण करे परन्तु जप, होम, अर्चनादिक शुभ कार्य्यों में तो इसको विशेष प्रयत्न पूर्वक धारण करे। गौरी तन्त्र में भी—

तुलसी धारिणं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति।
तस्य तुष्यन्ति पितरः मन्वन्तर शतावधौ ॥

तुलसी धारक ब्राह्मण को जो मनुष्य अपने द्वारा अनुष्ठित श्राद्ध में भोजन करवाता है उसके पितरगण सौ मन्वन्तर पर्यन्त परम सन्तुष्ट रहते हैं।

तथा कमल सम्भूतैस्तुलसीकाष्ठ निर्मितैः।
एभिश्च मालिकां कुर्य्यान्मतिमान्वैष्णवे मनौ ॥
गौतमीय तन्त्र अ० १५।

कमलाक्ष तथा तुलसी काष्टसे निर्मित माला ही मतिमान् वैष्णवों को श्रीवैष्णव मन्त्र जपके लिये रखनी चाहिए। श्रीवैष्णव मन्त्रों में तुलसी माला ही सर्व श्रेष्टा है अन्य मालाओं का प्रयत्नतः परित्याग करना उचित है।

केवलं तुलसी मालां वैष्णवा भिक्षुका अपि ।
विरक्त वृत्तिनश्चान्ये धारयेयुरितीरितम् ॥
धारणे च जपे दाने तुलस्याश्चातुलं फलम् ।
प्रभावमस्या देवास्तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥
—शाण्डिल्य वचनम् ।

श्रीवैष्णव सन्यासियों को, तथा विरक्त वृत्ति वाले अन्य पुरुषों को भी तुलसी माला सर्वदा धारणीया है। तुलसी धारण करने से, तुलसीमाला से जप करने से, तुलसी धारण करके दान करने से अतुलनीय फल प्राप्त होता है। इसका अत्यन्त प्रबलतम प्रभाव है। इसके प्रभाव को समस्त देवतागण तथा चतुर्मुख ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सकते हैं।

दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कीर्तिता नमिता श्रुता ।
रोपिता सेविता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥
नवधा तुलसी नित्यं ये यजन्ति दिने दिने ।
युगकोटि सहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ॥
स्कन्द पुराण ।

दर्शन द्वारा, स्पर्श, ध्यान, कीर्तन, नमन, श्रवण, रोपण सेवन, तथा पूजन इन नवधा प्रकारेण परम शुभा तुलसी का जो नित्य दिन प्रति दिन यजन करते हैं वे मनुष्य करोडों हजार युग पर्यन्त भगवान् श्रीहरि के दिव्य धाम में परम प्रसन्नता पूर्वक वास करते हैं तथा आनन्द लूटते हैं ।

तुलसीकाष्ठ संयुक्तं प्रेतराजस्य दूतकाः।
दृष्ट्वा दूरात्पलायन्ते वातोद्धूतं घनं यथा॥
धारयन्ति न ये मालां हेतुकाः पापबुद्धयः।
नरकान्न निवर्तन्ते दग्धा कोपाग्निना हरेः॥

—पद्म पुराण।

तुलसी माला धारक श्रीवैष्णव जनको देख करके यमराजा के दूतगण दूर से ही भयभीत होकर भाग जाते हैं जैसे पवन के झकोरे से मेघ भाग जाते हैं। जो मनुष्य इस तुलसी माला को प्रति दिन धारण किये नहीं रहते हैं वे पापबुद्धि भगवान् श्रीहरि की कोपाग्नि से दग्ध होते हैं तथा उनका नरक के क्लेशों से शीघ्र उद्धार नहीं होता है।

तुलसी मालिकां धृत्वा यो भुंक्ते गिरि नन्दिनि।
सिक्थे सिक्थे च लभते अश्वमेध फलाधिकम्॥
अन्तकालेऽपि यस्याङ्गे तुलसी मालिका स्पृशेत्।
तस्य देहोद्भवं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

—पद्मपुराण।

हे गिरिराजपुत्रि! तुलसीमाला धारण करके जो मनुष्य भोजन करता है उसे एक-एक कौर की एक-एक सीत पर अनन्तानन्त अश्वमेधादिक फल की प्राप्ति होती है। अन्तकाल में (मरते समय) भी जिसके अङ्ग में तुलसीमालिका स्पर्श कर लेती है उसके भी देहोद्भव सम्पूर्ण पाप सद्यः

नाश हो जाते हैं।

ततः सर्वेषु कालेषु धार्या तुलसी मालिका।
क्षणार्द्धं तद्विहीनोऽपि विष्णुद्रोही भवेन्नरः॥
यत्कण्ठे तुलसी नास्ति ते नराः मूढमानसाः।
अन्नं विष्टा जलं मूत्रं पीयूषं रुधिरं भवेत्॥

-पद्मपुराणे-शिववाक्य।

इस वास्ते सर्व काल में तुलसीमाला धारण करे अर्द्ध क्षण भी यदि तुलसीमाला से रहित हो जाता है वह मनुष्य भगवान विष्णु का द्रोही है, जिसके कण्ठ में तुलसी नही है वे मूढ मनुष्य हैं, विना तुलसी जल पीते हैं वे मूत्र पान करते हैं अन्न विष्ठा भक्षण तथा अन्यान्य पेय पदार्थ रक्तपान वत् घृणित होजाते हैं।

यज्ञोपवीत वद्धार्या कण्ठे तुलसी मालिका।
नाऽशौचं धारणेतस्य यतः सा ब्रह्मरूपिणी॥

-स्कन्दपुराण।

यज्ञोपवीत के समान सर्वदा तुलसीमाला को कण्ठमें धारण किये रहना चाहिये। यदि कहो कि अशौचावस्था में भी धारण किये रहे? इस पर कहते हैं तुलसी ब्रह्म स्वरूपिणी है सर्वदा पवित्र ही रहती है।

यज्ञोपवीतवद्धार्या सदा तुलसी मालिका।
क्षणमात्र परित्यागा विष्णुद्रोही भवेन्नरः॥
-गौरीतन्त्र।

अशौचेच्चाप्यनाचारे सर्वकाले तु सर्वदा।
तुलसी मालिकान्धस्तु स याति परमं पदम्॥
-नारदपञ्चरात्र।

इस प्रकार अनेकों प्रमाणों से यह प्रतिपादित होता है कि सतत कण्ठलग्ना तुलसी मालिका धारण करनी चाहिये।

धारण करिये तुलसी माला।
क्षण भर नही त्यागिये प्यारे, हारक है भव की ज्वाला॥
तुलसी बिनु सबअन्नजलादिक, अशुद्ध होता तत्काला॥
ताते धारो तुलसी की माला, उर्ध्वपुण्ड्र सुन्दर भाला॥
प्रेमनिधि प्रभु नाम पुकारो, मिलि जे है दशरथ लाला॥

तुलसी माला की अमित, महिमा परम उदार।
प्राण प्रिया प्रभुकी सदा। तुलसी है सुखकार॥
पूर्वदियो वरदान प्रभु, तुलसी ही सुखमान।
जाको तेरो स्पर्श हो, मोहि वह प्राण समान॥
अति उत्तम सुन्दर सुखद, चीज क्यों नहि होय।
अङ्गिकार नहि करत मैं, जो तब छुई न होई॥
इसी लिये हे सज्जनो पहिरो तुलसी माल।
करिहैं अङ्गीकार प्रभु कहि जोहैं भवजाल॥

प्रेमनिधि करजोरि के बिनवत बारम्बार।
तिलक माल धारण करो धनुर्वाण सुखकार॥

कालू भक्त की कथा प्रसिद्ध है। वह जात का मांझी (जिसे धीवर कहते हैं) रहा। उसको नाव चलाना तथा मछली मार कर खाना यही दो जीवनाधार काम थे। वह जहाँ-जहाँ गम्भीर जलाशय होते थे वहां से अति विशालकाय मत्स्यों को फँसा कर लाता था और बेंच कर पैसा कमाता था।

एक बार वह राजा के बगीचे में गया, वह बगीचा नदी के घाट पर था, उसकी बड़ी प्रसंसनीय सौन्दर्यता थी, टहलते२ वह कालू घाट पर पहुंचा और बड़ी सुन्दर मछलियों का देख कर उनकी चित्ताकर्षक क्रीड़ायें अवलोकन करते ही उसका जी ललक उठा, उसने चाहा कि यहां पर भी हाथ लगाना चाहिये, यद्यपि वहां पर जीव मारना सख्त मना था राजा की आज्ञा उल्लङ्घन करके भी उस कालू ने निस्तब्ध रात में उस घाट पर अपना कार्य शुरू किया।

रोज का उसे यही धन्धा होगया, एक बार राजा और उसके चार सहचर चाँदनी रातमें घोड़े सवार होकर बाहर टहलने गये थे, उनको उधर से आना ही था और इधर कालूने अपनी जाल पानी में फेंकी, भाग्यवश अकस्मात् उसकी दृष्टि उन घोड़ों पर पड़ी और अन्दाज भी किया कि -

खुद महाराजा सोहब ही आ रहे हैं। मनमें बिचार करनें लगा कि अब तो प्राण गये, हे दीनानाथ ! अब क्या करू ? कहीं भागने की भी तो दौड़ प्रतीत नहीं हो रही है। इतने ही में विचार आया, वह पक्के घाट से उतर कर रेतमें चला गया अपने कपड़े तथा जालको रेतके नीचे ढांक दिया, और जाल के नीचे चारों तरफ जो गोल-गोल लट्टू लगे रहते हैं उसको बनाली माला, थोड़ी धूल शरीर में पोतली और लगा सीता-राम सीताराम खूब ऊंचे स्वर से जपने।

उसका स्वर सुनकर राजा, मन्त्री तथा अर्दलिया वहां पहुंचे, महात्मा को दण्डवत् किये, और बहुत तरह से प्रार्थना करके राजमन्दिर में पदार्पण करने के लिये कहा, परन्तु महात्मा तो एकाग्र चित से वहीं प्रभु भजन परायण बैठे रहे, रात भर राजा और मन्त्री आदिकों ने महात्मा के दर्शन करते हुए उत्तर की प्रतीक्षा में वहीं पर बिताई।

प्रातःकाल हुआ तब महात्माजी ने स्नान ध्यान करके भगवन्नाम जपके अलावा और कोई भी शब्द का उच्चारण नहीं किया, कालू के इस आचरण को देखकर सब मुग्ध हो गये।

राजा अपने घर गया, वह स्नान भोजनादिक कार्यसे तथा राजकीय कार्यसे निवृत्त होकर शामको पुनः महात्मा के पास गया, राजा के जाने से अन्य नागरिक मनुष्य तथा और

आसपास की प्रजा भी दर्शनार्थ आने जाने लगी।

एक रोज राजा ने बड़े नम्र स्वर से महात्मा से प्रार्थना की और बड़े आदर सत्कार तथा राज सम्मानके साथ काल्लू भगत को अपने दरबार में ले गया और खूब उत्सव मनाया, काल्लू पुनः सायंकाल में नदी तट पर चला आया।

इसके बाद एक बार राजा ने फिर राज दरबार में पदार्पण करने के लिये प्रार्थना की, परन्तु इस समय भजन के प्रभाव से उसका हृदय विशुद्ध हो गया था मान बड़ाई उसे जहर सी प्रतीत होती थी। उसे—

एक अवलम्ब सीताराम नामकी।
और अवलम्ब सब ज़हर पानी॥

प्रतीत होती थी, श्रीगोस्वामीजी लिख गये हैं कि "राग राम नाम सों बिराग योग जागि है" उसके हृदय में भी भगवत्प्रेम प्रभाकरका उदय हो चुका था, अतः उसे अन्य चीजें कैसे अच्छी प्रतीत हों? उसने राजा को निर्भीक भावसे ललकार करके कह दिया कि "तुम मुझे विषयों में फंसाना चाहते हो परन्तु मैं अब कभी तुम्हारे पंजे में नहीं आ सकता" यों कह कर उसने अपना पूर्व वृत्तान्त भी सुना दिया, तथा इस समय के हृदय का भी वर्णन कर सुनाया, राजा तो चकित हो गया और प्रार्थना करके बोला कि जो कुछ हो आप मेरे पूज्य हो चुके मेरी दुर्विनीतता माफ करें। इस वचन को सुनकर

कालू का वैराग्य और चमक उठा। तथा—

धान्यो घड़ो दयालको तिलक छाप अरु माल।
यम उरपै कालू कहै भय मानै भूपाल॥

यों श्रीवैष्णव वेषकी प्रसंसा करता हुआ, श्रीगुरु शरण हो बनों चला गया और अन्तमें भगवद्धामका निवासी बन गया।

पाठको ! ये है माला धारण का विमल महत्व।

पञ्चसंस्कार संस्कृत की त्ता ।

पञ्चायुधाङ्का भुवि वैष्णवा ये-
मुखाग्रज क्षत्रिय वैश्य शूद्राः ।
स्त्रियस्तथान्येऽपि च विष्णुरूपा-
जगत्पवित्रं प्रपवित्रयन्ति ॥

इस भूमण्डल में पंचायुधांक श्रीवैष्णव परम पूज्य हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, तथा अन्त्यजादिक अन्य समस्त जातियां पंच संस्कारों से सम्पन्न होने पर विष्णुरूप हो जातीं हैं। जगत् को पावन करने वाले समस्त तीर्थस्थलों को भी पावनतम करने वाले पंच संस्कार सम्पन्न श्रीवैष्णवजन हैं।

ते सर्वतीर्थाश्रयभूतदेहा-
देशे महाभागवता वसन्ति ।
यत्रैव तद्दर्शन तत्स्थितिभ्यां-
जातः सुपुण्यो निखिलाघशून्यः ॥

समस्त तीर्थों के आश्रयभूत महाभागवत श्रीवैष्णव जिस देशमें निवास करते हैं वह देश परम पुण्यमय तीर्थ है क्योंकि जहां पर उन श्रीवैष्णवों का दर्शन होता है तथा निवास होता है वह देश परम पुण्यमय हो जाता है तथा निखिल पाप शून्य है ।

तद्दर्शनात्तत्पदनीरपाना-
त्तत्संगतोस्तत्प्रणतेर्विधानात् ।
तद्भोजनान्तरभोजनाच्च-
स्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः ॥

"ऐसे-ऐसे श्रीवैष्णवों के दर्शन से, चरणामृत पान से उनके सत्सङ्ग द्वारा, उनके श्रीचरणों में सादर प्रणाम करनेसे तथा उनके भोजन कर लेने के बाद उनकी प्रसादी भूत भोजन पाने से करोड़ों जन्मार्जित पापों का सञ्चय सद्यः विनाश हो जाता है और परम निर्मल प्रभु प्रेम की प्राप्ति होती है ।

श्रीरामसंस्कार विवर्जिता ये-
निपुच्छ शृंगा पशवो नरास्ते ।

शक्ता न वेदा अभिवर्णितुं य-
स्त्वत्तो मयाख्यातमविस्तरेण ॥
अहं विधाता गरुडध्वजश्च-
रामस्य बाले समुपासकानाम् ।
गुणाननन्तान् कथितुं न शक्ताः-
सर्वेषु भूतेष्व पावनास्ते ॥

—महारामायण ।

श्रीरामजी के पञ्च संस्कारों से जो सम्पन्न नहीं हैं वे मनुष्य बिना पूंछ तथा शृङ्ग के अभाङ्गलिक पशुवत् हैं तथा जो इन पंच संस्कारों से सम्पन्न हैं वे परम पुण्य स्वरूप हैं उनके गुणगणों को समस्त वेद, मैं, [शङ्कर] चतुर्मुख ब्रह्मा, गरुड़ध्वज श्रीविष्णु, तथा अन्य समस्त देवगण भी वर्णन नहीं कर सकते हैं, मैंने तो तुमसे संक्षेप में ही उनके महत्व का वर्णन सुनाया है, उनके परम पावनतम अनन्तानन्त शुभगुण हैं वे श्रीवैष्णव समस्त भूतों में पावनतम हैं पूज्य हैं तथा सर्व सम्माननीय हैं ।

दीक्षिताश्च चतुर्वर्णाः स्त्रियश्च श्वपचस्तथा ।
धारयन्त्यूर्ध्वपुण्ड्रं ये देवानामपि वन्दिता ॥
महाभागवता यत्र वसन्ति विमलाशयाः ।
तद्देशे मंगलं प्रोक्तं यथाविष्णु पदं शुभम् ॥

चारों वर्णों के मनुष्य, स्त्री, तथा श्वपच भी यदि श्रीवैष्णवी दीक्षा से दीक्षित हैं, तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं तो वे देवताओं करके भी वन्दनीय हैं। महाभागवत श्रीवैष्णव जिस जगह पर बसते हैं उन विमलान्तःकरण वालों के बास करने से वह देश मङ्गलमय तथा कल्याणमय बन जाता है जैसे भगवान् का श्रीविष्णुपद श्रीवैष्णवलोक।

विष्णोः प्रसादमाकांक्षन् वैष्णवान्परितोषयेत्।
अन्यथाऽवाप्त कामो सौ नैव केनापि तुष्यति॥
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन वैष्णवानर्चयेत्सुधीः।
सर्वं नश्यति दुःखौघं महाभागवतार्चनात्॥

बृहन्नारदीय।

"जो कोई भगवान् की परम सुख स्वरूपा कृपा की चाहना रखता हो वह श्रीवैष्णवों की सेवा करे भगवद्भक्तों को प्रसन्न रखे, तभी भगवान् प्रसन्न हो सकते हैं अन्यथा वह आप्तकाम प्रभु और किसी भी उपाय से प्रसन्न नहीं होते हैं इसीलिये सुन्दर बुद्धिमान् सज्जनों का कर्तव्य है कि वैष्णवों का पूजन करें, महाभागवत श्रीवैष्णवों की सेवा करनेसे समस्त दुःखो के समूह विनाश हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण दिशा विदिशायें सुखमय बन जाती हैं।

सहस्र वार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो हरेः।
सकृद्भागवतार्चायाः कलां नार्हति षोडशीम्॥

सकृत्सम्पूजिते पूण्ये महाभागवते गृहे ।
आकल्प कोटि पितरः परितृप्ता न संशयः ॥
यथा तुष्यति देवेशो महाभागवतार्चनात् ।
तथा न तुष्यति हरिर्विधिवत्स्वार्चनादपि ॥

—पाराशर स्मृतिः ।

भगवान् विष्णु की हजारहों वर्ष तक की हुई पूजा एकबार भी की हुई श्रीवैष्णव पूजा की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकती है, जिसके घरमें एक बार भी महा-भागवत श्रीवैष्णवों की पूजा होती है उसके पितर करोड़ों कल्प पर्यन्त परम सन्तुष्टता को प्राप्त करते हैं। देव शिरो-मणि भगवान जिस तरह श्रीवैष्णव पूजन से प्रसन्न होते हैं उस तरह विधिवत् अपने पूजनसें भी प्रसन्न नहीं होते हैं।

महाभागवतान् श्रेष्ठान् पूजयेद्गृहमागतान् ।
मधुपर्क विधानेन यथा शक्त्या द्विजोत्तम ॥

पद्म पुराण ।

हे द्विजोत्तम ! परम श्रेष्ट, महा भागवतों की पूजा करनी चाहिये और यदि भाग्यवश अपने घर पर ऐसे-ऐसे भगवद्भक्त आवें तो मधुपर्कादिक विधान पूर्वक प्रेम और आदर सहित यथा शक्ति सेवा पूजा करनी चाहिये ।

विष्णु भक्ति समायुक्तो मिथ्याचारोप्यनाश्रमी ।

पुनाति सकलाँल्लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो शूद्रो वा यदि वेतरः ।
विष्णुभक्ति समायुक्तो ज्ञेयो सर्वोत्तमोत्तमः ॥
—स्कन्द पुराण ।

मिथ्याचारी तथा अनाश्रमी होने पर भी यदि मनुष्य श्रीवैष्णव हो भगवत् प्रेम पूर्ण हो तो वह समस्त लोकों को पवित्र करता है, जैसे प्रभाकर के उदय होने पर समस्त लोक प्रकाश मय हो जाते हैं वैसे उस भक्त से समस्त लोक पुण्य-मय बन जाते हैं। ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शूद्र हो अथवा इन चतुर्वर्णों से इतर हो परन्तु यदि वह भक्ति सम्पन्न श्रीवैष्णव है तो उसे अन्य अभक्तों की अपेक्षा अत्यन्त उच्चतम समझना चाहिये ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि संख्यसंख्यानि सुन्दरि ।
भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्त स्पर्श दर्शनात् ॥
मन्मन्त्रोपासका भक्ताः विश्रमन्ति च भारते ।
पूतां कुर्वन्ति तत्रस्थां सुपवित्रां वसुन्धराम् ॥
मद्भक्ताः यत्र तिष्ठन्ति पादौ प्रक्षालयन्ति च ।
तत्स्थानं तु महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥
स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ।
जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्त स्पर्श दर्शनात् ॥

एकादशी विहीनश्च सन्ध्या हीनोऽपि नास्तिकः।
नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्त स्पर्श दर्शनात् ॥

—देवी भागवत स्कन्द ९ अ० ६।

श्रीगंगाजी के प्रति भगवान् कहते हैं कि हे सुन्दरि! इस भूमण्डल में जितने असंख्य तीर्थ हैं वे सबके सब मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्श द्वारा पवित्र होते हैं। मेरे मन्त्र जपमें निरत मेरे भक्त इस भारत वर्षमें जिस भूमिका पर विश्राम लेते हैं वह वसुन्धरा परम पवित्रा बन जाता है, मेरे भक्त जहां स्थित होते हैं अथवा तो पाद प्रक्षालन करते हैं पैर धोते हैं वह स्थल उसी समय परम पावन पवित्र तीर्थ बन जाता है, स्त्रीघाती, गो घाती, कृतघ्नी, ब्रह्मघाती, तथा गुरुतल्पगामी मनुष्य भी मेरे भक्तके दर्शन स्पर्श से परम पवित्र बन जाता है। एकादशी व्रतसे विमुख, सन्ध्यादिक कृत्य परित्यागी मनुष्य भी मेरे प्यारे भक्तों के दर्शन स्पर्श से परम पवित्र हो जाता है।

वैष्णवा यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति देवता।
स्वयं गच्छति विष्णुश्च ह्येष वेदार्थ संग्रहः ॥
गंगा च यमुना चैव कावेरी च सरस्वती।
सरयू नर्मदा सर्वास्तीर्थनद्यः अन्यान्यपि ॥
यत्रैव वैष्णवासन्ति तत्राऽयोध्या च काशिका।
मथुरावंतिका तत्र पुण्यः सर्वस्य पादिका ॥

—बाल्मीकि संहिता अ० ४।

प्रभुके प्यारे भक्त श्रीवैष्णव जिस जगह पर जाते हैं वहां उनके साथ-साथ समस्त देवतागण तथा देव देव शिरोमणि भगवान् भी उनके साथ चलते हैं। यह बात सर्व वेद सम्मत है। गङ्गा, यमुना, कावेरी, सरस्वती, सरयू, नर्मदा, तथा अन्यान्य तीर्थ नदियां भी श्रीवैष्णवों के साथ ही चलती हैं। जिस स्थल पर भगवत्प्रिय श्रीवैष्णवजन निवास करते हैं वहीं पर श्रीअयोध्या काशी, मथुरा, अवन्तिका, तथा अन्य मोक्षदायक पावन कारिणी पुरियां सतत निवास किया करती हैं।

यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः।
साधवः समुदाचारास्ते पुनन्त्यपि कीकटाः॥

—भगवद्वचनम्।

"जिस-जिस जगह पर मेरे भक्त प्रशान्त, समदर्शी, सदाचारी साधु महात्मा निवास करते हैं वह स्थल पावन हो जाता है यदि कीकट [मगध] हो तो भी।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था-
वसुन्धरा भाग्यवती च धन्या।
स्वर्गे स्थितास्ते पितरश्च धन्या-
येषां कुले वैष्णव नाम धेयम्॥

उनका कुल पवित्र है, उनकी जननी धन्यतम है, उस

स्थल की पृथिवी भाग्यवती है तथा धन्य है जहां श्रीवैष्णव प्रकट होते हैं, स्वर्ग में स्थित उनके पितर गण भी धन्य हैं जिनके कुल में श्रीवैष्णवजन हो। भगवद्भक्ति की महिमा ही प्रबल है, अरे प्रभुके प्रेमको प्राप्त कर लेने पर तो तिर्यक्-योनि समुत्पन्न भी पावन हो जाते हैं।

ते वै विदन्त्यति तरन्ति च देवमायां,
　　स्त्री हूण शवरा अपि पाप जीवाः।
यद्यद्गुणक्रम परायणशील शिक्षा-
　　स्तिर्यग्जना अपि किमुतश्रुत धारणा ये ॥

जो-जो भगवान् के पवित्र गुणगणों के कथन श्रवण में परायण हैं तथा शील शिक्षा सम्पन्न हैं वे भक्त प्रभुके दिव्य महिमा को जान सकते हैं। फिर भले वे स्त्री, शूद्र, हूण, शवरादिक पाप जीव भी क्यों न हों?वे देवमाया को तर जाते हैं और की तो बात ही क्या यदि तिर्यग्जन भी उपरोक्त गुण सम्पन्न हों तो वे भी उसी उत्तमा गति को प्राप्त करते हैं, तब फिर श्रुतिधारी वेदज्ञ ब्राह्मण यदि भगवद्भजन करके उस गतिको प्राप्त करें तो कौन बडा आश्चर्यमय कार्य है ? भक्तिके प्रभाव से ही भक्तका प्रभाव है, भक्ति के कारण भक्तकी महिमा अपार है, इसी वास्ते शास्त्रों में श्रीवैष्णवों की इतनी प्रचण्ड महिमा का सहस्त्रों स्थलों पर वर्णन प्राप्त होता है, पद्म पुराण में तो यहां तक लिखा है कि—

संसारो वैष्णवाधीनो देवा वैष्णव पालिताः ।
अहं च वैष्णवाधीनस्तस्माच्छ्रेष्टाश्च वैष्णवाः ॥

वैष्णवोच्छिष्ट भोजन तथा वैष्णव चरणोदक की महिमा का वर्णन भी पद्मपुराण में लिखा है कि—

नातः परतरं तीर्थं वैष्णवाङ्घ्रि जलाच्छुभात् ।
तेषां पादोदकं नित्यं गंगामपि पुनाति हि ॥
राम भक्तानुशेषन्तु यो हि भुंक्ते दिने दिने ।
सिक्थे सिक्थे च लभते चान्द्रायणशताधिकम् ॥
कोटि जन्मार्जितं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
सद्यः प्रणश्यते नृणां वैष्णवोच्छिष्ट भोजनात् ॥

श्रीवैष्णव चरण जलसे बढ़कर कोई भी तीर्थ है ही नहीं, उनके पादोदक पान से मनुष्य पवित्र होता है तथा श्रीवैष्णव चरणोदक गंगाजी को भी पवित्र करता है। श्रीराम भक्तों की सीथ प्रसादी, (उच्छिष्ट भोजन) को जो सेवन करता है उसको प्रति कौर की एक २ सीत पर सैकड़ों चान्द्रायण व्रतसे भी बढ़कर फल प्राप्त होता है, ज्ञान से अज्ञान से जो कुछ हो गये हों वैसे करोड़ों जन्मों के सञ्चित पाप पुञ्ज श्रीवैष्णवोच्छिष्ट भोजन करनेसे तत्काल सद्यः नाश हो जाते हैं। आगममें—

आस्फोटयन्ति पितराः नृत्यंति च मुहुर्मुहुः ।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नः त्राता भविष्यति ॥

तावद्भ्रमन्ति संसारे पितराः भारतत्पराः ।
यावद्वंशे सुतो रामभक्तियुक्तो न जायते ॥

ओह ! आज तो हमारे कुलमें प्रभुका प्यारा श्रीवैष्णव भक्त पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह अपने भजन के प्रभाव से हम लोगों की रक्षा करेगा, इस कामना से प्रफुल्लित होकर पितर गण ताल ठोकते हैं, हँसते हैं तथा नाचते हैं, तभी तक पापके भारसे पीडित पितरगण इस संसार में यत्र-तत्र भटका करते हैं तथा दुःख सहते हैं जब तक कुलमें श्रीरामभक्ति सम्पन्न पुत्र उत्पन्न नहीं होता है । जब प्रभु भक्तिवाला पुत्र उत्पन्न होता है तब तो पितर सब कृतार्थ हो जाते हैं उनकी कर्म बेड़ियां टूट जाती हैं तथा यमयातना छूट जाती है ।

भगवद्भक्ति दीप्ताग्नि दग्धदुर्जाति कल्मषः ।
श्वपचोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेदाढ्योऽपिनास्तिकः ॥

—हारित ।

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं यथा ।
वीक्ष्यते जाति सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम् ॥

—वामन पुराण ।

परम प्रदीप्त भगवद्भक्ति स्वरूप अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला से जिसके जातीय कल्मष पाप जलकर भस्मीभूत हो

चुके हैं वैसा चाण्डाल भी परम पूज्य तथा विद्वज्जनों से प्रशंसनीय है परन्तु जो नास्तिक है प्रभु प्रेम रहित है वह ब्राह्मण वेदज्ञान सम्पन्न होनेपर भी श्लाघ्य नहीं होसकता है अतः शूद्र हो, निषाद हो या श्वपच भी हो परन्तु उस भक्त की कभी जातीय निकृष्टता का ख्याल करके निन्दा नहीं करनी चाहिये (अवगणना) नहीं करनी चाहिये। यदि हीन कुलोद्भव भक्त की जातीय हीनता का विचार करके कोई अपमान करता है तो वह अवश्यही नरकगामी होता है। ऐसे भक्तों की प्रशंसा करते हुए शास्त्रकार तो लिखते हैं।

निवसन्ति महात्मानो यत्र चैकान्तिनो द्विजाः।
देवा देवर्षयो नित्यं तद्देशं पर्युपासते ॥

बाराहपुराण।

जिस स्थल पर अनन्य महात्मागण विशेषतः द्विज कुलोत्पन्न भक्त निवास करते हैं उस स्थल का समस्त देवता गण तथा देवर्षिगण निरन्तर उपासना करते हैं।

श्रीविष्णोर्वैष्णवानां च पावनं चरणोदकम्।
सर्वं तीर्थमयं पीत्वा पुमान् भवति निर्मलः ॥

अगस्त्य संहिता।

भगवान् श्रीविष्णु तथा भगवद्भक्त श्रीवैष्णवों का चरणोदक परमपावन है, सर्वतीर्थमय है, उसको पान करने वाला मनुष्य परम निर्मल हो जाता है।

भगवानेव सर्वत्र भूतानां कृपया हरिः।
रक्षणाय चरँल्लोकान्भक्त रूपेण नारद!॥

अनन्त करुणानिधि परम पिता परमेश्वर ही अपने पुत्रवत् दुःखित तथा भवाटवी में भ्रमित पथभ्रष्ट जीवों के हितके वास्ते सर्वदा श्रीवैष्णव स्वरूप धारण करके अवनि-तल में भ्रमण करते हैं तथा भवभयग्रस्त जीवों को दुःख से उद्धार करते हैं।

सर्वत्र वैष्णवाः पूज्याः स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
देवतानां मनुष्याणां तथैवोरग रक्षसाम्॥
येषां वाक्य जलौघेन विना गंगा जलैरपि।
विना तीर्थ सहस्रेण स्नातो भवति मानवः॥
—स्कन्दपुराण।

इसी वास्ते श्रीवैष्णव परमपूज्य हैं, स्वर्गलोक, मर्त्य-लोक, तथा रसातल में, देवगण, मानवगण तथा उरगगण तथा राक्षसों द्वारा भी श्रीवैष्णव भक्त पूज्यतम हैं। जिनके उपदेशमय वाक्यप्रवाह द्वारा विना गङ्गाजल के तथा विना हजारहों तीर्थों के अवगाहन के भी घर बैठे मनुष्य परम निर्मल, पवित्र होजाता है तथा गङ्गादिक तीर्थ नदियां और तीर्थों के अवगाहन करनेका फल प्राप्त करता है। कितने महानुभावों का यह कथन है कि द्विज कुल या विप्रवंशोद्भव भक्तों का ही इतना उच्च महत्व है परन्तु अन्य जाति वाले

भक्त उतने माननीय या पूज्य नही हो सकते हैं परन्तु उनका यह कथन तथा नियम इस भक्तिमार्गके वास्ते नही है यह नियम कोरे कर्मठों के वास्ते है, इसीसे भक्तों के वास्ते नही, भक्तिशास्त्र के प्रतिपादक तथा भक्तिसूत्रकार शाण्डिल्य प्रभृति महर्षियों ने मुक्तकण्ठ से उद्घोष करते हुये लिखा है कि—

आनिन्द्य योन्यधिक्रियते पारम्पर्यात्सामान्यवत् ।

शां० सू० ७८

आनिन्द्य योनियो में उत्पन्न होने वाले को भी इस भक्ति मार्ग में पूर्ण अधिकार है । यही प्राचीन पारम्परिक प्रथा है ।

अतोह्यविपक्वभावानामपितल्लोके । शां० सू० ७९ ।
क्रमैक गत्युपपत्तेस्तु । उत्क्रान्ति वाक्यशेषात् ।
महापातकिनां त्वार्तौ । शां० सू० ८० । ८१ । ८२ ।

अतः अविपक्व भाव वालों को भी उसी गति की प्राप्ति होती है, क्रमशः जो उत्तम गति प्राप्त होती है इस नियम को उत्कृष्ट भजनका प्रताप तोड़ देता है, अनन्य भाव से भजन करने वाले को अति शीघ्र परम मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है । महापातक सम्पन्न मनुष्यों के हृदय में जब प्रेमो-द्रेक होता है तब वे बहुत जल्दी से भगवान् के चरणों के

प्रेमी बन जाते हैं। इसी लिये उन भक्तों को शीघ्रही भगवत् प्राप्ति हो जाती है।

स्मृतः सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया॥

यदि चाण्डाल भी भगवान् का भक्त हो तो उसके स्मरण से, उसके साथ सम्भाषण से, उसके पूजन से हे द्विजोत्तम! मनुष्य परम पवित्र हो जाता है। अतः—

श्वपचोऽपि महीपाल! विष्णुभक्तो द्विजाधिकः।
विष्णुभक्ति विहीनस्तु यतिश्च श्वपचाधमः॥

हे महीपाल! जो विष्णुभक्त है वह श्वपच भी समस्त द्विजों से श्रेष्ठ है तथा विष्णुभक्ति हीन अवैष्णव यदि उत्तम कुल प्रसूत तथा यति हो सर्व सद्गुण सम्पन्न हो तथापि वह अवश्य ही उस भक्त श्वपच से अत्यधम है। सनत्कुमार संहिता में तो साफ लिखा है कि—

एवं श्रीराम धर्मस्य सर्वे वर्णाधिकारिणः।
ब्राह्मणस्तु विशेषेण क्षत्रियश्चापि युधिष्ठिर!॥
इमं सर्वोत्तमं धर्मं धारयन्ति च ये नराः।
देव पूज्यास्तु ते ज्ञेयाः श्रीरामस्यातिवल्लभाः॥
गच्छन्ति निश्चितं ते श्री रामधाम परात्परम्।
प्रयान्ति पितरस्तेषां वैकुण्ठं हरि सन्निधौ॥

ये नमन्ति बुधास्तान्वै ते कृतार्थो न संशयः ।
निन्दन्ति ये महामूढ़ा भवन्ति प्रेत पन्नगाः ॥
प्रायश्चित्तं तु तेषां वै न कदाचिद्भवेद्भुवि ।
कुम्भीपाके महाघोरे पतन्ति नरके मृताः ॥

स० सं० षष्ठ अध्याय ।

हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार इस परमोदार श्रीराम-धर्मके सर्व साधारण-अधिकारी हैं, स्त्री तथा अन्त्यज भी इस मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं परन्तु ब्राह्मणों का तो यह मुख्य-तम धर्म है। जो इस धर्मका पालन करते हैं वे देवतुल्य अति पूज्य हैं तथा वे भगवान् श्रीराम के परम प्रिय हैं। अन्तमें वे श्रीवैष्णव श्रीराम धामको प्राप्त करेंगे तथा उनके पितरगण भी प्रभुके नित्य धामके निवासी बन जांयगे। जो बुद्धिमान् मनुष्य उन श्रीराम-भक्तों को दण्डवत् प्रणाम करते हैं वे कृतार्थ हैं, धन्य हैं, तथा जो उनकी निन्दा करते हैं वे नर अभागे हैं और अन्तमें प्रेत पन्नगादिक योनियों में जन्मते हैं, उन पापियों के पापों का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है, वे श्रीवैष्णव निन्दक मनुष्य मरनेके बाद कुम्भीपाक नामक नरक में अत्यन्त कष्ट भोगते हैं ।

इस प्रकार हमारे धर्मग्रन्थों में शास्त्रों में, वेदों में, पुराणों में श्रीवैष्णवों का, [पञ्च संस्कार सम्पन्नों का] अपार माहात्म्य भरा पड़ा है, भक्तों के सुयशों का

यथार्थ रूपेण भगवान् भी गान नहीं कर सकते हैं तब फिर अन्यान्य तुच्छ जीव तो उन महात्माओं की महान् गंभीर महिमा का वर्णन कैसे कर सकते हैं ? सन्तों की अपार महिमा है। अपार लीला है। असीम गुण हैं। अनन्त महात्म्य है। अतः ऐसे श्रीवैष्णव महात्माओं का कोई भी अपराध न बन पड़े इस वास्ते प्रत्येक विज्ञों को सचेत तथा प्रयत्न शील रहना चाहिये, और हृदय खोलकर श्रीभगवान् के तथा उनके प्यारे भक्तों का गुणगान करना चाहिए और अपने इस मानव जीवन को सुफल बनाना चाहिए।

प्रभुके प्यारे सन्तोंकी महिमा का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी ने खूब ही लिखा है यथा-

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संतकी।
जिन्हके विमल विवेक, शेष महेश न कहिसकत॥

मही पत्री करि सिन्धु मसि, तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी गणपति सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ॥
धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रवर सोइ।
तुलसी जो रामहि भजै, जैसे हु कैसे हु होइ॥
तुलसी भगत श्वपच भलो, भजै रैनि दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहां न हरि को नाम॥
अति ऊँचे भूधरन्हि पर, भुजगन्ह के अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान॥

—वैराग्य संदीपिनी।

महात्मा श्रीरसरङ्गमणि जी ने भी पञ्चसंस्कारसम्पन्न की महिमा का वर्णन लिखते हुए क्या ही अच्छा लिखा है-

रामतिलक अङ्कित अमल, भाल भाग को शाल।
लखि बन्दत रसरङ्गमणि, विधि शिवादि सुर जाल॥
धन्य भाल ऊरध तिलक, अङ्कित राम सु नाम।
धन्य सुजन जो निज हिये, सुमिरत सीताराम॥
राम तिलक दीन्हे सुजन, देव सरिस दरशाय।
राम तिलक बिनु भूत सम, देखत नहीं सुहाय॥
रामायुध अङ्कित भुजा, अवसि भेटिहैं राम।
भवनिधि तरि रसरङ्गमणि, आय रामके धाम॥
श्रीतुलसी वाणी विमल तिमि तुलसीकी माल।
जिन्हके गल रसरङ्गमणि ते तरिहैं कलिकाल॥

—रसरङ्ग विलास।

उपरोक्त महात्माओंके स्वरमें स्वर मिलाकर हमें भी श्रीवैष्णव गुणगान करना चाहिये। मुक्तकण्ठसे कहना चाहिये कि —

जय जय जय वैष्णव सुखद, जय अगणित गुनखान।
महिमा निशिदिन संतकी, गावत वेद पुराण॥
पञ्चायुध संयुत विमल, सुन्दर जिनकी देह।
दरश परस सतसंग से, उपजत प्रभु पद नेह॥

—:*:*:*:*:—

उपसंहार

इस प्रकार शास्त्र मतानुसार पञ्च संस्कार सम्पन्नों की महत्ता, पञ्चसंस्कार धारणप्रमाण, पञ्चसंस्कार धारण विधि, पञ्चसंस्कारकी आवश्यकतादिक निबन्धों से इस पुस्तकमें यह प्रतिपादन हो चुका है कि प्रत्येक मानव देहधारी जीवों को इस श्रीवैष्णव धर्मपथपर आरूढ़ हो जाना परमावश्यक है. आशा है कि आस्तिक प्रजा अवश्यही इन शास्त्र वचनों द्वारा बोध प्राप्त करके अपने जीवनको सफल कल्याण मय बनानेके वास्ते इस श्रीवैष्ण धर्म पालनमें परायण होगी तथा मेरे श्रमको सफल बना कर सर्वदाके वास्ते मुझे अनुग्रहीत करेगी —

बस. अब सर्वेश्वर निखिल कल्याणगुणगुणालंकृत श्रीसच्चिदानन्द स्वरूप, परमपिता, श्रीरामजी तथा जगज्जननी श्रीजनकात्मजाजीके पवित्र पादारविंदों में सहर्ष अभिवन्दन करता हुआ तथा उनके अनेकों उपकारों का कृतज्ञता पूर्वक संस्मरण करता हुआ इसको यहीं पर समाप्त करता हूं ।